ISSN : 2319-8567

करभ

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

2019 | अंक-17

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
पोस्ट बैग–07, जोड़बीड़, बीकानेर–334 001
(राजस्थान), भारत

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर
ICAR -National Research Centre on Camel, Bikaner
हिन्दी पखवाड़ा
09-23 सितम्बर, 2019
भाकृअनुप– राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
बीकानेर (राज.)

करभ

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

2019

अंक-17

-: प्रकाशक व संपर्क सूत्र :-

निदेशक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र

पोस्ट बैग-07, जोड़बीड़, बीकानेर-334 001 (राजस्थान), भारत

दूरभाष : 0151-2230183

फैक्स : 0151-2970153

ई-मेल : nrccamel@nic.in

वेबसाईट : www.nrccamel.icar.gov.in

करभ

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

2019

अंक-17

संरक्षक व प्रकाशक

डॉ. आर.के. सावल

निदेशक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

प्रधान सम्पादक

डॉ. बसंती ज्योत्सना

वैज्ञानिक एवं प्रभारी राजभाषा

सम्पादक

श्री नेमीचन्द बारासा

सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

संपादक मंडल

डॉ. वेद प्रकाश, वरिष्ठ वैज्ञानिक

डॉ. मो. मतीन अंसारी, वैज्ञानिक

श्री हरपाल सिंह कौंडल, वैयक्तिक सहायक

डॉ. राकेश कुमार पूनियाँ, वरिष्ठ तकनीकी सहायक

नोट :– पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार, लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा 'करभ' पत्रिका का सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रकः

मै. रॉयल ऑफसेट प्रिन्टर्स, ए–89/1, नारायणा इण्डस्ट्रीयल एरिया, फेस–1, नई दिल्ली–110028

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1	पशुधन उद्यम के रूप में आजीविका सुरक्षा हेतु ऊँटनी के दूध की संभावनाएँ	आर. के. सावल	1
2	ऊँटनी के दूध से आइसक्रीम उत्पादन : एक नया आयाम	देवेन्द्र कुमार, मो. मतीन अंसारी एवं आर. के. सावल	4
3	विशेषताओं से भरा ऊँट एवं उसका दूध : एक परिचय	मो. मतीन अंसारी, देवेन्द्र कुमार, बसंती ज्योत्सना एवं राकेश रंजन	7
4	ऊँटनी का दूध : उष्ट्र विकास एवं संरक्षण का ठोस आयाम	सुमेर सिंह	9
5	दूध से उत्पन्न बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक समीक्षा	अमर सिंह मीना, राजीव कुमार, एस. एस. मिश्रा, अरूण कुमार, ध्रुव मालाकार एवं एस. डे	12
6	उष्ट्र स्वास्थ्य में उपयोगी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों का तर्काधार	एफ.सी. टूटेजा, आर.के.सावल, विजय सिंह देवल, अविनाश शर्मा एवं नेमीचन्द बारासा	16
7	ऊँटों में चेचक (माता) रोग के लक्षण व बचाव	शिरीष नारनवरे	20
8	पशुओं में थनैला बीमारी : कारण, प्रबंधन एवं उपचार	काशी नाथ	23
9	ऊँटों में पाईका रोग	एफ.सी. टूटेजा, एस.डी.नारनवरे, आर.के.सावल, राकेश पूनियाँ एवं राधाकृष्ण	25
10	निपाह वायरस बीमारी : पशुओं से मनुष्यों में होने वाली महामारी	सुरेन्द्र, अभिषेक गौरव एवं रिधिमा महादेवा	28
11	पारंपरिक या एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति में राजस्थान में पाये जाने वाली वनस्पतियों का महत्व	अमिता रंजन, सुविधि, जीशान नवी एवं राकेश रंजन	30
12	भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र के मुख्य विस्तार कार्य	राजेश कुमार सावल एवं नेमीचंद बारासा	33

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
13	उष्ट्र के लिए चारा एवं चरभूमियों का प्रबन्ध	प्रियंका गौतम, बनवारी लाल, बसंती ज्योत्सना एवं महेंद्र कुमार राव	36
14	बावली : पश्चिमी राजस्थान की बहुपयोगी झाड़ी	जे. पी. सिंह, बी. एस. राठौड़ एवं एम. एल. सोनी	40
15	जैविक पशुपालन हेतु चारा उत्पादन एवं प्रबन्धन	राजेश नेहरा	43
16	ऊँटों पर होने वाले मानवीय अत्याचार या क्रूरता एवं उनका कानूनी निवारण	अमिता रंजन	49
17	आवारा गोवंश – कारण एवं निदान	वेद प्रकाश, शालिनी सुथार, गजानंद एवं बसंती ज्योत्सना	53
18	ऊँट दौड़ : पोषण की विशेष आवश्यकताएँ	राजेश कुमार सावल	60
19	प्लास्टिक का सदुपयोग करके पर्यावरण को बचाएँ	बनवारी लाल, प्रियंका गौतम एवं रंग लाल मीणा	62
20	प्राकृतिक आपदा के समय पशुओं की आहार व्यवस्था	योगेश आर्य, जाग्रति श्रीवास्तव, श्याम सुंदर सियाग, भूपेंद्र कस्वां एवं लूणाराम	69
21	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऊँटों की आहार व्यवस्था	जाग्रति श्रीवास्तव, योगेश आर्य एवं ज्योति श्रीवास्तव	72
22	वायु को शुद्ध रखने में सहयोगी इंडोर प्लांट	विनोद कुमार यादव एवं शिल्पा यादव	73
23	तब न जाने क्यों..?	श्याम निर्मोही	76
24	ऊँट री चाल	राजेश कुमार सावल	77
25	महिलाओं की खुशहाली का सकारात्मक प्रभाव	दीपिका लालवानी	78
26	शिक्षा	स्वामी विमर्शानन्द गिरि	80
27	ठूंठ	राजेश कुमार सावल	81
28	राजभाषा संबंधी गतिविधियां		82

संरक्षक की कलम से...

डॉ. आर.के. सावल

कृषि कार्यों के अतिरिक्त ऊँट आज भी मरु क्षेत्र के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आजीविका का एक प्रमुख साधन है जिनका लाभ आमजन भी उठा रहे हैं एवं पशु के संरक्षण हेतु अपना योगदान भी साझा कर रहे हैं। परंतु आज के भौतिकवादी युग में पशुओं को उनकी उपयोगिता व महत्व के दृष्टिकोण से स्थान मिलने लगा है तो जाहिर है इस ऐतिहासिक प्रजाति 'ऊँट' की उपयोगिता को लेकर भी एक आमधारणा प्रचलित होने लगी है। लेकिन मानव स्वास्थ्य लाभ के परिप्रेक्ष्य से ऊँटनी का दूध, पर्यटन व्यवसाय के तहत ऊँट सवारी, उष्ट्र दौड़, ऊँट नृत्य, ऊँट के चमड़े, हड्डी, बाल आदि से निर्मित आकर्षक उत्पाद, मांगलिक अवसरों पर ऊँट की बढ़ती मांग जैसे विभिन्न क्षेत्र से न केवल उष्ट्र पालन व्यवसाय को संबल मिला हैं अपितु इसकी प्रासंगिकता को नए आयामों में प्रकट कर रहे हैं।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, ऊँटों से संबद्ध एक प्रमुख अनुसंधान संस्थान है तथा अपने महत्व को प्रतिपादित करने हेतु केन्द्र के वैज्ञानिकों ने ऊँटों के विभिन्न पहलुओं पर गहन अनुसंधान कर उपयोगी जानकारी एवं महत्वपूर्ण आंकड़े एकत्रित किए हैं। इसका लाभ न केवल भारत अपितु उष्ट्र बाहुल्य देशों को भी मिल रहा है। साथ ही केन्द्र ने मशीनी युग में ऊँट के संरक्षण एवं विकास हेतु वैकल्पिक उपयोग तलाशे जाने को एक वैज्ञानिक दायित्व के रूप में चुना तथा ऊँटनी को एक दुधारू पशु के रूप में ठोस आधार प्रदान करने हेतु अपने परिसर में उष्ट्र डेयरी एवं उष्ट्र दुग्ध पार्लर की स्थापना की गई। केन्द्र द्वारा ऊँटनी के औषधीय गुणधर्मों को ध्यान में रखते हुए मानव स्वास्थ्य लाभ हेतु इसे जाँचा–परखा गया। अनुसंधान में यह दूध मधुमेह, क्षय रोग, ऑटिज्म के प्रबंधन में कारगर सिद्ध हुआ है। वहीं ऊँटनी के दूध से अनेकानेक मूल्य–संवर्धित दुग्ध उत्पाद विकसित किए गए। केन्द्र के प्रयास रंग ला रहे हैं और देशभर में ऊँटनी के दूध के प्रति जागरूकता में आशातीत वृद्धि हुई है। केन्द्र से प्रेरित व प्रशिक्षित होकर कई ऊँट पालक व उद्यमी इस व्यवसाय की ओर उन्मुख होकर इसे अपनाने भी लगे हैं। अतः यह सुखद है कि अब ऊँटनी के दूध को उद्यमिता से जोड़ कर देखा जाने लगा है।

यह केन्द्र, अनुसंधान के साथ–साथ एक पर्यटन स्थल के रूप में अपनी उपयोगिता को दर्शाता आया है तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा केन्द्र को आंवटित नूतन अधिदेशों ने उष्ट्र पर्यटन व्यवसाय की दिशा में और अधिक खुलकर काम करने की प्रेरणा प्रदान की है। इससे उत्साहित होकर केन्द्र द्वारा संचालित विभिन्न आकर्षक पर्यटन गतिविधियों में धोरों पर लम्बी दूरी की उष्ट्र सवारी की सुविधा प्रारम्भ की गई। साथ ही जिला प्रशासन व पर्यटन विभाग, बीकानेर द्वारा अंतर्राष्ट्रीय ऊँट उत्सव–2020 में ऊँट दौड़ प्रतियोगिता हेतु प्रथम बार केन्द्र का चयन किया जाना अपने

आप में महत्वपूर्ण है। केन्द्र द्वारा आयोजित इस दौड़ प्रतियोगिता में सैंकड़ों सैलानियों की उमंग भरी उपस्थिति, उष्ट्र प्रजाति की लोकप्रियता एवं सुनहरे भविष्य को दर्शाती है।

निष्कर्षतः ऊँट पालन व्यवसाय को सुदृढ़ बनाने हेतु केन्द्र अपने वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान को विविध गतिविधियों के माध्यम से बाहरी (फील्ड) क्षेत्रों में हस्तांतरण करने हेतु सतत प्रयत्नशील है। साथ ही ऊँट पालकों व किसान भाइयों की आय के नूतन स्रोत तैयार करने हेतु व्यावहारिक तौर पर पुरजोर कोशिश में है।

राजभाषा पत्रिका 'करभ' के 17 वें अंक के प्रकाशन पर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस प्रकाशन से जुड़े सभी लेखक गणों को मेरी ओर से बधाई संप्रेषित करता हूँ। करभ, ऊँट पालकों, किसानों, उद्यमियों एवं पाठकों के मध्य एक प्रेरणा–पुँज बनकर उभरे, इसी अभिलाषा व शुभ कामनाओं के साथ।

(आर.के. सावल)
निदेशक

प्राक्कथन

डॉ. बसंती ज्योत्सना

मानवीय सभ्यता के विकास में भाषा का सबसे अहम योगदान माना जाता है। भाषा जहां व्यक्तिगत तौर पर हमारे जीवन को सरल व सहज बनाती है वहीं सामाजिक समूहीकरण की ओर भी हमें उन्मुख करती है।

हिन्दी भाषा उन्मुक्त एवं समरस भाव से अपनी विकास यात्रा की ओर अग्रसर है। अगर सरल शब्दों में बात कही जाए तो यह सहोदरी भाषाओं को हंसकर गले लगाती है और अपने हृदय स्थल में स्थान देती है। भाषा में विद्यमान आत्मसात् की यही भावना इसे निर्बाध रूप से नए–नए क्षेत्रों में स्वागत सत्कार हेतु अवसर दिलाती है।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र अपने कार्यक्षेत्र संबंधी महत्वपूर्ण गतिविधियों एवं कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन हेतु राजभाषा हिन्दी को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त करता है क्योंकि केन्द्र इस बात से भलीभांति परिचित है कि वैज्ञानिक–किसान के मध्य संवाद में यह भाषा एक योजक कड़ी के रूप में काम करने का माद्दा रखती है। केन्द्र के विषय–विशेषज्ञों द्वारा प्रचार–प्रसार सामग्री के तहत प्रकाशित अनेकानेक विस्तार पत्रक, लघु पुस्तिकाएँ, तकनीकी बुलेटिन आदि इस बात का द्योतक है। इसी फेहरिस्त में राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'करभ' एक महत्वपूर्ण प्रकाशन के रूप में अपनी उपयोगिता को निरंतर सिद्ध कर रही है।

केन्द्र की राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'करभ' के 17 वें अंक के प्रकाशन में वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कार्मिकों तथा अन्य सभी लेखक गणों ने जन कल्याणार्थ की भावना से अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया है। इस हेतु आप सभी का हम आभार व्यक्त करते हैं। पाठकों को यह अंक उपयोगी व रूचिकर लगेगा, इसी आशा व विश्वास के साथ।

(बसंती ज्योत्सना)
प्रभारी राजभाषा

पशुधन उद्यम के रूप में आजीविका सुरक्षा हेतु ऊँटनी के दूध की संभावनाएँ

आर. के. सावल
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

रेगिस्तान के जहाज 'ऊँट' का स्मरण आम जनता में उत्सुकता पैदा करता है और घुमावदार रेत के टीलों के ऊपर ऊँट की सवारी का रोमांचकारी अनुभव, सवारी को और भी खास बनाता है और आने वाले लोगों के लिए इससे रेगिस्तान अधिक जीवंत हो उठता है। पारंपरिक रूप से ऊँट का उपयोग कृषि कार्य तथा भारवाहक पशु के रुप में किया जाता रहा है। वर्तमान समय में पर्यटन गतिविधि तथा मानव स्वास्थ्य लाभ के लिए इसके उपयोग के माध्यम से आय उत्पन्न करने की आवश्यकता है तथा ऊँट एवं ऊँट आधारित उघमों का विकास करने की जरुरत है।

राज्य में ऊँट की आबादी का 0.4 मीलियन से 0.25 मीलियन तक पहुँच जाना इसकी जनसंख्या में गिरावट को दर्शाता है। 2012 से 2019 के बीच नर ऊँटों की आबादी की तुलना में मादा ऊँटों की आबादी धीमी दर से कम हुई है। यह दिलचस्प है कि मादा ऊँटों की आबादी में अपेक्षाकृत कम कमी आई है। कुल ऊँटों की आबादी में मादा ऊँटों की संख्या के आंकड़े काफी दिलचस्प है क्योंकि पिछली पशुगणना की तुलना में इस बार इनका योगदान कुल आबादी में बढ़ा है। कुल आबादी में मादा ऊँटों के योगदान में 30 प्रतिशत सुधार हुआ है और यह दूध की उपयोगिता को दर्शाता है। ऊँटनी का दूध अब राजस्थान के विभिन्न जिलों में बेचा जा रहा है, जिससे ऊँट चरवाहों के लिए आजीविका सुरक्षा में सुधार के अवसर बेहतर होते जा रहे हैं। इसके अलावा भारवाहन के लिए ऊँटों का उपयोग राजस्व सृजन के विशेष स्रोत है। यह राजस्थान में ऊँट की जनसंख्या प्रवृत्ति में परिवर्तन (तालिका 1) के रूप में परिलक्षित होता है।

ऊँट से प्राप्त उत्पादों की लोकप्रियता, पर्यटकों के बीच दिन–ब–दिन बढ़ रही है। इनमें चमड़े से बने उत्पाद, ऊँट की हड्डियों से निर्मित उत्पाद, ऊँटनी के दूध और इसके गोबर से बने उत्पाद शामिल हैं। ऊँट के चमड़े से बने विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे कि पर्स, कैप, बेल्ट आदि पर्यटकों के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। हाथी दांत के उपयोग पर प्रतिबंध के कारण, ऊँट की हड्डी से बने उत्पादों को पर्यटकों द्वारा पसंद किया जाता है, जो किए गए काम की निपुणता और ऊँट की हड्डी से बने विभिन्न उत्पादों की लागत को दर्शाते हैं। कच्चे और पाश्च्युरीकृत दूध के अलावा, ऊँटनी के दूध से बने अन्य उत्पाद विशेष रूप से ऊँटनी के दूध की चॉकलेट, पनीर, मीठा दूध, किण्वित उत्पाद, आइसक्रीम, चाय, कॉफी आदि भी दुनिया भर में लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं।

ऊँटनियों का कच्चा दूध आमतौर पर राजस्थान, गुजरात और हरियाणा के ग्रामीण इलाकों में पीने के काम में लिया जाता है। इसे उबालने के बाद चाय/कॉफी और अन्य मिठाइयों को बनाने के काम में भी लिया जाता है।

तालिका 1. पिछली दो पशुगणनाओं में ऊँट की आबादी

ऊँट की आबादी	2012 (लाख)	2019 (लाख)	जनसंख्या में गिरावट (प्रतिशत)
नर	1.9	0.8	57.9
मादा	2.1	1.7	19.0
कुल	4	2.5	37.5
कुल जनसंख्या का प्रतिशत के रूप में			
नर	47.5	32.0	
मादा	52.5	68.0	

स्रोतः– पशुधन गणना 2019

ऊँटनी के दूध को बढ़ावा देने के लिए भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र द्वारा कई सार्थक प्रयास किए गए हैं जिसमें ऊँटनी को दुधारू पशु के रूप में स्थापित करने का प्रयास एक महत्वपूर्ण पहल है। उष्ट्र प्रजाति के दूध को भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण द्वारा मान्यता प्राप्त है, मानकों का निर्धारण होने से इसके व्यापार के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ हैं। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र द्वारा ऊँटनी के दूध से विभिन्न उत्पाद जैसे सुगंधित दूध, चाय, कॉफी, कुल्फी, लस्सी, पनीर, बर्फी, पेड़ा, खीर, आइसक्रीम, चीज़ आदि विकसित किए गए हैं। केंद्र में आने वाले पर्यटकों के बीच ये उत्पाद काफी लोकप्रिय हैं। मिल्क पार्लर की सफलता से समाज में ऊँटनी के दूध और दुग्ध उत्पादों के बारे में जागरूकता बढ़ रही है।

केंद्र और दुनिया की अन्य प्रयोगशालाओं में ऊँटनी के दूध पर शोध से पता चला है कि यह प्रतिरक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने में बहुत प्रभावी है। ऊँटनी के दूध पर केंद्र में वैज्ञानिक शोध द्वारा मधुमेह, तपेदिक और ऑटिज्म रोगों के प्रबंधन में प्रभावी साबित हुए हैं। नीचे वर्णित विभिन्न प्रकार के उद्यम जो कि ऊँटनी के दूध का उपयोग कर सकते हैं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समृद्धि लाने के लिए कुटीर उद्योगों के रूप में आय सृजन के लिए सहायक हो सकते हैं :

1. स्वयं और अन्य ऊँट मालिकों के लिए ऊँटनियों का दूध
2. दूध का संग्रहण
3. दूध की पैकेजिंग और परिवहन
4. उष्ट्र दुग्ध उत्पादों का उत्पादन
5. ऊँटनी के दूध के उत्पादों की बिक्री
6. दूध को सूखाना एवं पाउडर बनाना
7. विभिन्न प्रकार की क्रीम, शैंपू, अन्य सौंदर्य प्रसाधनों का उत्पादन और बिक्री
8. ऊँटनी के दूध आधारित उत्पादों का विपणन

एक दर्जन से अधिक उद्यमियों ने ऊँटनी के दूध का व्यवसाय शुरू किया है, विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादों का उत्पादन और इसकी बिक्री जिसमें 'सारिका राइका दूध भण्डार' जयपुर शामिल है, जहां मालिक ऊँटों का पालन करते हैं, और भारत के विभिन्न शहरों में दूध बेचते हैं। श्री गंगानगर में 'कैमल मिल्क सेंटर' नामक केंद्र पंजाब और राजस्थान में ऊँटनी के दूध के विपणन में शामिल है। 'देवासी ड्योढी भंडार' उदयपुर में दूध बेच रहा है। वहीं जैसलमेर में दूध बेचने वाली सहकारी समिति दूध की बिक्री करती है। जैसलमेर ऊँट दुग्ध डेयरी विभिन्न ऊँट दुग्ध उत्पादों का उत्पादन और बिक्री कर रहा है, जिसका सेवन विदेशी और भारतीय दोनों पर्यटक करते हैं। लोकहित पशु पालक संस्थान, सादड़ी, पाली भी ऊँटनी के दूध और दूध उत्पादों के संग्रह और बिक्री में भी मदद कर रहा है, विशेषकर ऊँटनी के दूध के रूप में। आदविक फूड्स दूध के प्रसंस्करण में शामिल है, जो विभिन्न उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री कर व्यापार कर रहा है और पूरे भारत में लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। एक उद्यमी द्वारा हैदराबाद में एक छोटी ऊँट डेयरी इकाई खोली गई है और दूसरा उद्यमी ऊँट दुग्ध उत्पादों के विपणन में शामिल है जो अब हैदराबाद में बेचा जा रहा है।

राजस्थान के बीकानेर, चूरू, नागौर, सीकर, जैसलमेर, बाडमेर, जालौर, पाली जैसे कई क्षेत्रों में शहरीकरण का विस्तार धीरे–धीरे ऊँट की आबादी को सीमित कर रहा है। रिफाइनरी, पवन चक्की, सौर संयंत्र और राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण के कारण कनेक्टिविटी से राज्य में कृषि–बागवानी का विस्तार हुआ है। दक्षिण में सिरोही, उदयपुर, कोटा, बूंदी, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़, राजसमंद, प्रतापगढ़ आदि पहाड़ी क्षेत्र बायोमास की उपलब्धता के कारण ऊँट की आबादी को बनाए हुए हैं जो इस पशुधन के अस्तित्व को जीवित रख सकते हैं।

गुजरात में ऊँट की आबादी 27.62 हजार है। चरवाहे विशेष रूप से भुज जिले में ऊँटनी के दूध का व्यापार कर रहे है, जहां से अमूल दूध की खरीद कर रहा है, इसका प्रसंस्करण तथा इसे संसाधित कर रहा है और ऊँटनी के दूध तथा इससे बना चॉकलेट उपभोक्ताओं को बेच रहा है। राजस्थान राज्य के अलावा, हरियाणा के सीमावर्ती ऊँट मालिक भी ऊँटनी के दूध का व्यापार करने और आर्थिक रूप से इसे व्यवहार्य उद्यम में विकसित करने हेतु इच्छुक

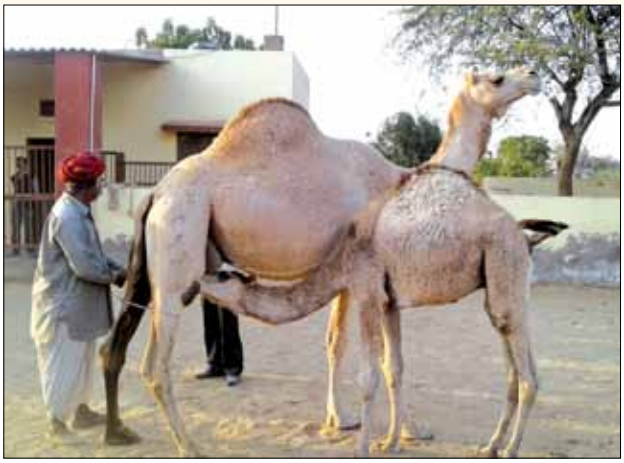

हैं। कई अन्य उद्यमी भी हैं जो ऊँटनी के दूध का भारत के कई शहरों में व्यापार कर रहे हैं।

ऊँटनी का दूध और फ्रीज–ड्राई पाउडर अब विभिन्न राज्यों में परिवहन साधनों और पूरे भारत में ऑनलाइन बिक्री के माध्यम से विभिन्न उद्यमियों तक पहुंचाया जा रहा है और कुछ उद्यमियों द्वारा तैयार किए गए चॉकलेट के उत्पादों ने कई सुपर बाजारों में प्रवेश किया है। देश में ऊँटनी के दूध का वर्तमान उत्पादन और बिक्री लगभग 1100 लीटर प्रतिदिन है, हालांकि, शुष्क पारिस्थितिकी के तहत क्षमता को 20 गुना तक बढ़ाने की व्यापक गुंजाइश है, जो भारत में विभिन्न प्रकार की उद्यमशीलता से आय उत्पन्न करने में मदद कर सकती है।

ऊँटनी के दूध के क्षेत्र में उद्यमिता के अवसर, ऊँटों को पालने वाले लोगों की संख्या को बनाए रखने में मददगार साबित हो सकता हैं। यद्यपि दूध की बिक्री में शामिल उद्यमियों/किसानों की संख्या सड़कों और रेलवे के साथ उनके स्थानों की संपर्कता के आधार पर बढ़ती जा रही है, हालांकि परिवहन की दृष्टि से दुग्ध व्यवसाय को सुरक्षित बनाने हेतु उत्पादन और उसकी साफ–सुथरी पैकेजिंग/हैंडलिंग के बारे में उन्हें शिक्षित करने की आवश्यकता है जो उन्हें और अधिक बेहतर एंटरप्रेन्योर बना सकता है।

निष्कर्षतः ऊँट की घटती उपयोगिता के कारण वर्षों से इसकी आबादी में भारी गिरावट देखी जा रही है। मशीनों और हल्के परिवहन साधनों ने ड्राफ्ट और सामान के लिए ऊँट के उपयोग को कम कर दिया है। इसकी वैकल्पिक उपयोगिता खोजने के प्रयासों ने विभिन्न मानवीय बीमारियों के प्रबंधन के लिए इसके दूध के उपयोग का मार्ग प्रशस्त किया है। दूध से प्राप्त लाभकारी परिणाम, मानव जाति के लिए इसके व्यापक उपयोग की प्रेरणा दे रहे हैं। जिससे ऊँट चरवाहों के बीच फिर से इस व्यवसाय के प्रति रुचि पैदा हुई है, जो कि पहले ऊँट पालन में अपनी रुचि खो रहे थे। उत्पादन के अलावा बेहतर आर्थिक प्रतिफल के लिए ऊँटनी के दूध से उत्पाद बनाने और विपणन के क्षेत्र में उद्यमिता विकसित करने की व्यापक गुंजाइश है जिसे मानव जाति के लाभ के लिए प्रचारित किया जाना है और उपयोगिता में गिरावट का सामना कर रही प्रजातियों को बचाना चाहिए।

ऊँटनी के दूध से आइसक्रीम उत्पादनः एक नया आयाम

देवेन्द्र कुमार[1], मो. मतीन अंसारी[1] एवं आर. के. सावल[2]
[1]वैज्ञानिक, [2]निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में ऊँट पालन कृषि एवं पशुपालन का अभिन्न अंग है। यह पशु न केवल कृषि व यातायात के कार्यों में उपयोगी है बल्कि बीते एक दशक से इस प्रजाति के मादा पशुओं का उपयोग दूध उत्पादन हेतु कुशलता पूर्वक किया जाने लगा है। ऊँटनी का दूध केवल पोषण की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि इसका उपयोग कई बीमारियों में बहुत लाभप्रद पाया गया है। वर्तमान परिदृश्य में ऊँटनी के दूध का उपयोग पीने से लेकर विभिन्न प्रकार के मूल्य–संवर्धित दूध उत्पाद बनाने में भी किया जाने लगा है। आइसक्रीम एक ऐसा मूल्य–संवर्धित दूध उत्पाद है जिससे आमजन भी परिचित है और सभी ने कभी न कभी अपने जीवन में इसको चखा भी होगा। आइसक्रीम दूध, क्रीम, चीनी एवं अन्य सामग्री को मिलाकर एक विशेष तकनीक से जमाया गया दूध उत्पाद है। आइसक्रीम को दूध, वसा, चीनी और सुगन्धित पदार्थो युक्त अर्ध जमी हुई एक मिठाई भी कहा जा सकता है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसन्धान केंद्र, बीकानेर में ऊँटनी के दूध का उपयोग आइसक्रीम बनाने में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। डेरी उद्योग पर आधारित आइसक्रीम बनाने का व्यवसाय बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इसको कोई भी छोटे उद्यमी छोटे स्तर पर शुरू करके अपनी व्यवसाय को एक दिशा दे सकता है।

देश के सभी क्षेत्रों में बने–बनाये खाद्य पदार्थो की मांग बढ़ती जा रही है। खासकर युवाओं में फास्ट–फूड की तरफ रुझान के कारण आइसक्रीम से जुड़े व्यवसाय में वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। एक आँकड़े के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति आइसक्रीम की खपत उन्नत देशों की तुलना में बहुत कम (लगभग 200 मिली) है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय तौर पर यह आंकड़ा प्रति व्यक्ति 2 लीटर है जिससे यह पता चलता है कि हमारे देश में आइसक्रीम से जुड़े व्यवसाय के विस्तार की सम्भावना है। वैसे तो आइसक्रीम का उपभोग मुख्य तौर पर शहरों में किया जाता है, लेकिन विभिन्न कार्यक्रमों, आयोजनों जैसे शादी समारोह, जन्मदिन पार्टी, वर्षगांठ इत्यादि में ग्रामीण इलाकों में भी आइसक्रीम का उपभोग होने लगा है।

ऊँटनी के दूध से आइसक्रीम बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं उपकरण :

आइसक्रीम उत्पादन हेतु सामग्री की आवश्यकता आइसक्रीम के प्रकारों पर आधारित है परन्तु मुख्य रूप से इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री इस प्रकार है–

- **ऊँटनी का दूध** : आइसक्रीम उत्पादन हेतु दूध ताजा एवं स्वच्छ होना चाहिए। दूध को निकालने के पश्चात् साफ कपड़े से छान कर ठंडा करके रखना चाहिए।
- **क्रीम** : आइसक्रीम में कुल वसा की मात्रा लगभग 10–12 प्रतिशत तक होनी चाहिए। इसके लिए हमें अलग से क्रीम मिलाने की जरुरत पड़ती है। यह क्रीम ऊँटनी के दूध से भी प्राप्त की जा सकती है।
- **वसा–रहित दूध पाउडर** : आइसक्रीम में कुल ठोस की मात्रा को संतुलित करने हेतु वसा–रहित दूध पाउडर का उपयोग किया जाता है। यह पाउडर ऊँटनी के दूध से भी बनाया जा सकता है या बाजार में उपलब्ध वसा–रहित दूध पाउडर को भी उपयोग में लाया जा सकता है।
- **चीनी** : आइसक्रीम एक मीठा दुग्ध उत्पाद है। अतः इसमें चीनी मिलाना आवश्यक है एवं इसकी मात्रा लगभग 14–15 प्रतिशत तक होती है। यह न केवल मिठास बढ़ाता है बल्कि आइसक्रीम की संरचना/बनावट में भी काफी महत्वपूर्ण योगदान देता है।

- **स्टेब्लाईजर** : आइसक्रीम में कई सारी सामग्री मिलाई जाती है। इन घटकों को पूरी तरह मिलाने एवं स्थिर रखने में स्टेब्लाईजर का काफी महत्वपूर्ण योगदान है। अल्जिनेट, ग्वार गम, जिलेटिन इत्यादि का उपयोग आइसक्रीम में स्टेब्लाईजर के रूप में होता है।
- **रंग एवं सुगंध** : किसी भी खाद्य पदार्थ की उपभोक्ता स्वीकृति में उसके रंग एवं सुगंध का महत्वपूर्ण स्थान है। आइसक्रीम की अत्यधिक स्वीकार्यता हेतु इसमें एक या एक से अधिक रंग एवं सुगंध मिलाये जा सकते हैं।

आइसक्रीम उत्पादन उपकरण

- **वैट पाश्च्युराईजर** : इस उपकरण का उपयोग कर आइसक्रीम का मिश्रण तैयार किया जाता है एवं मिश्रण को एक निश्चित तापमान (85°C) पर आधे घंटे तक गरम किया जाता है।
- **मिल्क होमोजेनाइजर** : इस उपकरण से आइसक्रीम के मिश्रण को होमोजेनाइज किया जाता है जिससे कि इसको ठंडे तापमान पर भण्डारण के दौरान सतह पर क्रीम की परत नहीं जम सके। इस प्रक्रिया का आइसक्रीम की संरचना/बनावट पर भी काफी सकारात्मक प्रभाव रहता है।
- **एजिंग वैट** : इस उपकरण का उपयोग आइसक्रीम के मिश्रण को ठंडा करने एवं इसे 4–5 घंटे तक भंडारित करने के लिए किया जाता है जिससे मिश्रण की संरचना में काफी सकारात्मक बदलाव आता है।
- **आइसक्रीम फ्रीजर** : आइसक्रीम उत्पादन में इस उपकरण की काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आइसक्रीम के मिश्रण को इसमें डालकर लगभग 10 मिनट तक मशीन को चलाया जाता है जिससे मिश्रण ठंडा होता है एवं एक क्रीमी संरचना वाली आइसक्रीम प्राप्त होती है। प्राप्त आइसक्रीम को इच्छानुसार कप व बीकर में भर कर आइसक्रीम हार्डनिंग चेम्बर में जमा लिया जाता है। पैक्ड आइसक्रीम का भंडारण–20°C पर डीप फ्रिज में किया जाता है।

आइसक्रीम की गुणवत्ता हेतु भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित मानक

गुणवत्ता	मानक
वजन (न्यूनतम)	525 ग्राम/लीटर
कुल ठोस (न्यूनतम)	36.0 प्रतिशत
दूध वसा (न्यूनतम)	10.0 प्रतिशत (अस्थायी)
अम्लता (अधिकतम)	0.25 प्रतिशत (लैक्टिक एसिड)
सुक्रोज (अधिकतम)	15.0 प्रतिशत
स्टेबलाइजर/पायसीकारक (अधिकतम)	0.5 प्रतिशत
स्टैण्डर्ड प्लेट काउंट	2,50,000/ग्राम
कोलीफॉर्म काउंट	90/ग्राम
फॉस्फेटेज परीक्षण	नकारात्मक

ऊँटनी के दूध से आइसक्रीम बनाने हेतु प्रवाह चित्र

आवश्यक सामग्री का चयन
(दूध, क्रीम, दूध पाउडर, चीनी, स्टेब्लाईजर, सुगंध एवं रंग)

↓

मिश्रण में प्रत्येक सामग्री का गणन
(मिश्रण में सभी सामग्रियों की मात्रा की गणना की जानी चाहिए)

↓

मिश्रण बनाना
(निर्धारित क्रम में पाश्च्युराइजर वैट में सामग्री को डालकर मिलाना)

↓

मिश्रण को पाश्च्युराइज करना
(85°C पर 30 मिनट के लिए)

↓

मिश्रण को होमोजेनाईज करना
(500 psi एवं 2500 psi पर दो चरणों में)

↓

मिश्रण को ठंडा करना एवं परिपक्व करना
(4 से 5°C पर 4 से 5 घंटे के लिए)

↓

मिश्रण को जमाना

↓

आइसक्रीम की पैकेजिंग एवं सख्तीकरण

↓

भण्डारण
(-20°C पर)

मिल्क होमोजेनाइजर एवं आइसक्रीम फ्रीजर

ऊँटनी के दूध से बनी आइसक्रीम

विशेषताओं से भरा ऊँट एवं उसका दूध : एक परिचय

मो. मतीन अंसारी[1], देवेन्द्र कुमार[1], बसंती ज्योत्सना[1] एवं राकेश रंजन[2]
[1]वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट (कैमलस ड्रोमेडेरियस) गर्म और शुष्क रेगिस्तानी क्षेत्र का पशु है जो चारे और पानी की कमी में भी आसानी से रह सकता है। भारत में ऊँटो की मुख्यतः चार नस्ल (बीकानेरी, कच्छी, मेवाड़ी और जैसलमेरी) पाई जाती है। गरम जलवायु परिस्थितियों और इसके उपयोग और विशेषता के तहत कम संसाधनों पर अच्छी तरह से पनपने की अपनी क्षमता के बावजूद, 2007 और 2012 में ऊँट की आबादी क्रमशः 0.517 मिलियन से 0.4 मिलियन तक की उच्च दर (–22.63 प्रतिशत) से घट रही है (डीएएचडी एवं एफएओ 2012) (तालिका 1)।

ऊँट की विशेषताएँ

ऊँटो में कई अद्वितीय गुण होते हैं जो इसे गर्म और शुष्क रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य पालतू जानवरों की तुलना में विशिष्ट रूप से बेहतर बनाते हैं। यह पर्यावरणीय चरम सीमा में भी रह सकता है जहां अन्य पशुधन स्वयं को बनाए नहीं रख सकते हैं। भारत में ऊँटों (ड्रोमेडरीज) का भौगोलिक वितरण मुख्यतः गुजरात, हरियाणा और राजस्थान राज्यों में हैं। ऊँट जुगाली करते हैं परन्तु कुछ संरचनात्मक विशेषताओं में सच्चे जुगाली करने वालों से भिन्न होते हैं। ऊँटों के पेट के तीन भाग होते हैं। लेकिन ओमोसम (omasum) नहीं होता है जो कि जुगाली करने वालों के तीसरे पेट के विभाजन को माना जाता है, जिसे पेट के पानी के पुनर्वितरण वाला भाग माना जाता है। इसलिए ऊँट को स्यूडो रूमिनेन्ट (pseudo ruminant) भी कहते हैं।

इनमें पित्ताशय (Gall Bladdder) भी नहीं पाया जाता है और खुरों की तरह पंजे में मोटा पैड होता है। गाय की तरह ऊँटो के अयन में चार निप्पल होते हैं। प्रत्येक निप्पल में दो छिद्र (orifices) होते हैं। मादाएं आमतौर पर 4–5 साल की उम्र में पहली बार ग्याभिन होती हैं और टोरडीए लगभग 8–18 महीने तक स्तनपान करते हैं।

रेगिस्तान के निवासियों के अस्तित्व को बनाए रखने के साधन के रूप में इसके महत्व के कारण, प्रायः ऊँट जनजातियों की सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

ऊँटनी का दूध

अन्य दूध की तुलना में ऊँटनी के दूध की मुख्य विशेषता इसमें कम वसा का पाया जाना है। इसमें कुल लवणों, मुक्त कैल्शियम और विटामिन 'सी' और कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों, जैसे लौह, तांबा और जस्ते का प्रतिशत अधिक होता है। विभिन्न अध्ययन में यह पाया गया है कि रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र की बहुत कठोर परिस्थितियों में, ऊँट अन्य प्रजातियों की तुलना में अधिक दूध का उत्पादन करने की क्षमता रखते हैं और लंबे समय तक दूध देने की क्षमता भी होती है। ऊँटनी के दूध को उसके असाधारण औषधीय गुणों के लिए पहचाना जाता है। ऊँटनी से दिन में दो बार दूध प्राप्त किया जाता है। प्रतिदिन दूध का उत्पादन लगभग 3.5 से 10.5 किलोग्राम के बीच होता है लेकिन कुछ ऊँटनियाँ 10–15 किलोग्राम प्रतिदिन दूध भी देती है।

तालिका 1. 1956 से 2012 तक ऊँट की जनसंख्या (DAHD और FAO के अनुसार)

वर्ष	1956	1961	1966	1972	1977	1982	1987	1992	1997	2003	2007	2012
ऊँट (लाख)	8	9	10	11	11	11	10	10	9	6	5	4

दूध अपनी लगभग पूरी खाद्य संपत्ति के लिए जाना जाता है जो अपने आप में अधिकांश पोषक तत्वों और ऊर्जा का अच्छा स्रोत है। अन्य मवेशियों के दूध की तुलना में ऊँटनी के दूध में वसा और कुल प्रोटीन का प्रतिशत कम होता है जबकि कुल लवण और विटामिन 'सी' का प्रतिशत अधिक होता है। इसके अलावा, दूध में मौजूद विभिन्न घटक और जठरांत्र संबंधी मार्ग में दूध–प्रोटीन के पाचन से उत्पन्न पेप्टाइड्स जैविक गतिविधि की एक विस्तृत श्रृँखला का प्रदर्शन करते हैं।

ऊँट पालकों की पोषण सुरक्षा के लिए ऊँटनी के दूध का पारंपरिक उपयोग आम लोगों के लिए स्वास्थ्य पेय में बदल गया है और ऊँटनी के दूध की कई निजी डेयरियां राष्ट्रीय स्तर के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामने आई हैं।

2017 के एफएसएसएआई संशोधन द्वारा विनियमों में खाद्य पदार्थ के रूप में ऊँटनी का दूध (न्यूनतम 2 प्रतिशत वसा और 6 प्रतिशत एसएनएफ) शामिल किया गया है।

ऊँटनी का दूध विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं को नियंत्रित करने और उनकी रोकथाम में लाभकारी प्रभाव के कारण मान्यता में वृद्धि कर रहा है।

ऊँटनी का दूध इस मायने में बहुत अनोखा है कि यह अम्लीय वातावरण में नहीं जमता है और विभिन्न केसीन और बीटा–लैक्टोग्लोबुलिन रहित होता है।

ऊँटनी के दूध में एंटी–डायबिटिक, एंटी–ऑक्सीडेंट और एंटी–एलर्जिक (दूध एलर्जी) गुण होते हैं, जो इसे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी 'सुपर फूड' बनाते हैं।

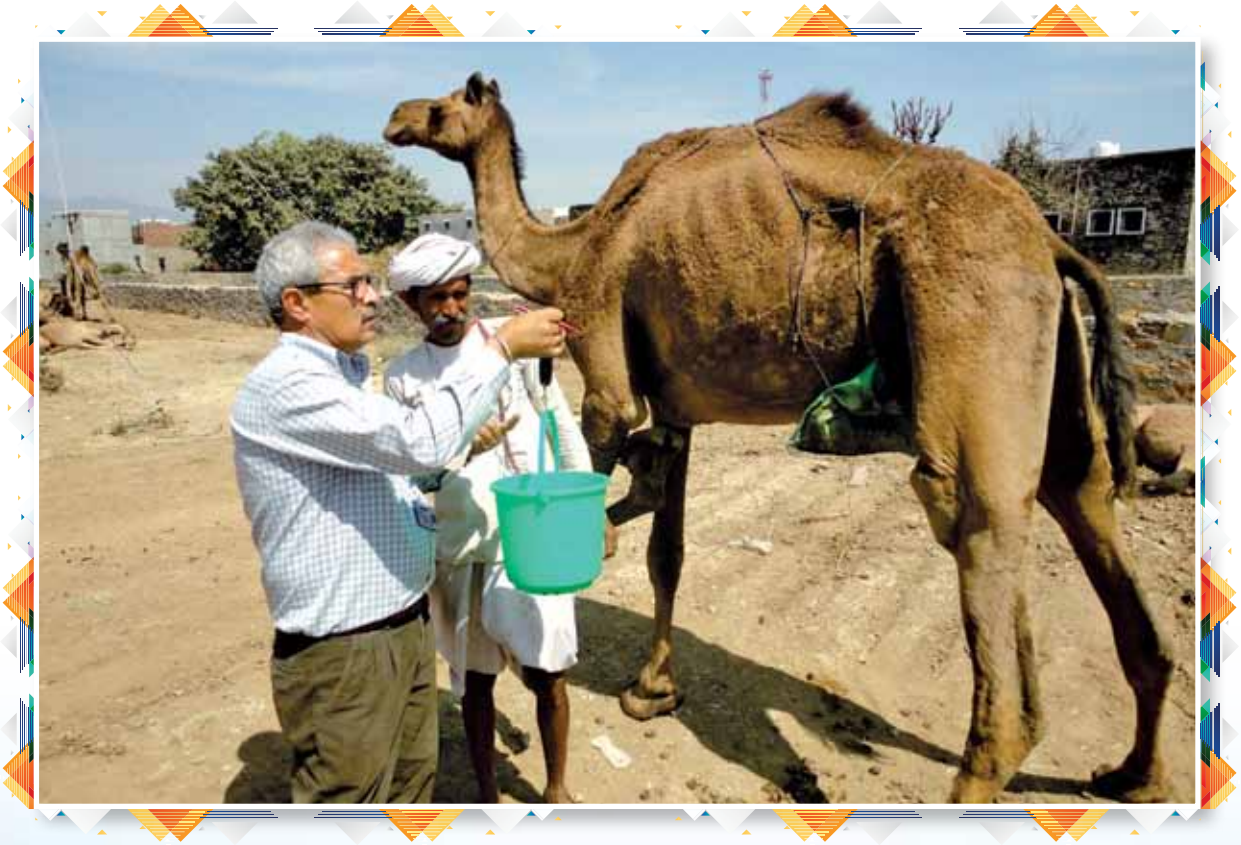

ऊँटनी का दूध : उष्ट्र विकास एवं संरक्षण का ठोस आयाम

सुमेर सिंह
प्रगतिशील उष्ट्र पालक
जैसलमेर (राजस्थान)

मनुष्य के लिए पृथ्वी पर जीवनयापन करने का सबसे विषम क्षेत्र है मरुस्थल या रेगिस्तान, जहाँ उच्च तापमान, तेज धूलभरी हवाओं व जल की कमी किसी के भी जीवन को नरकीय बनाने के लिये काफी है, लेकिन फिर भी मानवीय सभ्यताओं ने मरुस्थल में साम्राज्य खड़े किये, अन्न भी उगाया और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी किया। आज भी अधिकाँश लोग चीन से निकल कर एशिया के कई देशों से यूरोप तक गुजरने वाले रेशम मार्ग को, मात्र एक दृश्य दिखाकर समझा सकते हैं, ऊँचे रेतीले टीलों के मध्य से गुजरती ऊँटों की कतार। यह एकमात्र प्राणी है जो हमारे मानस पटल पर मरुस्थल और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को एक साथ परिभाषित करता है। जरा सोचिये ! अगर यह ऊँट न होता तो क्या विभिन्न संस्कृतियों के आपसी विचारों का सम्पर्क हो पाता ? घोड़े की ताकत से इतिहास में साम्राज्य अवश्य बने लेकिन उन साम्राज्यों का पोषण ऊँटों के बिना असम्भव था, अपनी लम्बे–लम्बे डगों से जल्दी–जल्दी चलने वाला, पहाड़ की चोटी जैसी आकृति में ज्यादा सरफेस एरिया पर मजबूत कूबड़ लिये ज्यादा माल के साथ, कम राशन पानी का उपभोग कर हजारों किलोमीटर का सफर तय करता यह रेगिस्तानी जहाज पूर्व में चीन से पश्चिम के मगरिब तक सभी को अनाज, कपड़े, पुस्तकें और नये–नये विचारों को पहुँचाता रहा और सभी मानवीय सभ्यताओं को एकसूत्र में बांधकर रखता रहा। लेकिन समय की कैसी विडंबना है कि आज यह स्वयं अपने अस्तित्व की जंग लड़ रहा है, वो भी किससे, उसी संस्कृति से जिसे इसने जन्म दिया था, जो अब आधुनिक और विकसित हो चुकी है। उफ्फ! यह विकसित शब्द ही बड़ा बेरहम है, यह एक चलते फिरते प्राकृतिक जीव को लोहे के इंजनों के सामने अनुपयोगी घोषित कर देता है। बेचारा ऊँट तो अब इस विकसित संस्कृति में सबसे पिछड़ा हुआ जीव प्रतीत होने लगा है, कभी लाखों की संख्या में मिलने वाला अब कुछेक लाख में सिमट कर रह गया। इससे भी बदत्तर स्थिति उन लोगों की है, जो कभी ऊँटों के सैंकड़ों की संख्या में टोले लेकर गर्व से घूमते थे, आज विकसित समाज में हाशिये पर जीवनयापन कर रहे हैं। आज जिस 'गोरबन्द' नामक शब्द से राजस्थानी संस्कृति की पहचान है, वह इन्ही ऊँटों और ऊँटपालकों के मधुर रिश्ते से निर्मित हुई है। सदियों से ऊँटों को चराते हुए राइका, देवासी व रेबारी समाज ऊँटों के इस अमूल्य गहने को बनाता आया है, थार के अंचलों की भाषाओं और बोलियों में ऊँट व ऊँटपालन से जुड़े ढेरों शब्द हैं और अनेक सांस्कृतिक पहलू भी, जो अब इनकी घटती संख्या के साथ विलुप्त हो रहे हैं। लेकिन आज भी कुछ लोग इनके महत्व और इनसे जुड़ी संस्कृति को भविष्य के लिये बचाकर रखने की जद्दोजहद में लगे हुए हैं, इसी फेहरिस्त में जैसलमेर जिले में हम ऊँट प्रजाति के संरक्षण व विकास हेतु तन्मय भाव से प्रयासरत है ताकि मानवीय सभ्यता के विकास में अतुलनीय योगदान देने वाले इस प्रजाति के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की जा सके। हम यह मुहिम, हमारे गाँव साँवता में श्री देगराय जी के मन्दिर व प्राचीन रजवाड़ों के समय से सुरक्षित ओरण चारागाह में अपने ऊँटों के साथ चला रहे हैं। वर्तमान के आर्थिक युग में ऊँटों और उनके इस आखिरी ओरण चारागाह को बचाने की हमारी यह मुहिम शायद समय के साथ दौड़ लगाने जैसी ही है। हमने दो वर्ष पहले अन्य ऊँट पालको के साथ मिलकर श्री देगराय उष्ट्र संरक्षण संस्थान की स्थापना की और ऊँट के आर्थिक पहलुओं को आधुनिक बाजार के अनुसार ढालने का प्रयास भी। आज संस्था के माध्यम से जैसलमेर शहर में 'जैसलमेर कैमल मिल्क डेयरी' नाम से ऊँटनी के दूध, आइसक्रीम व अन्य खाद्य पदार्थों का व्यवसायिक निर्माण व प्रचार किया जा रहा है। समय के साथ ऊँट के सम्बंध में अनेक भ्रांतियां भी आम लोगों में बढ़ चुकी है, जिसको खत्म करने का कार्य भी हमारी संस्था द्वारा किया जा रहा है। कुछ दिन पूर्व जानकारी में आया कि जिस प्राचीन ओरण में पशुपालक ऊँट चराते हैं, वह भी अब सुरक्षित नहीं है। बस तब से लगे हुए हैं इस ओरण को बचाने में। यह ओरण ही तो सदियों

से ऊँट पालन की आत्मा रही है, ऊँटों को चराई के लिये एक वृहद क्षेत्र चाहिए, जहाँ से यह तकरीबन 50 तरह की विभिन्न मरुस्थलीय वनस्पतियों से अपना भोजन प्राप्त करता है। यह वनस्पतियाँ समय के साथ प्राकृतिक रूप से उगती और बढ़ती रहती हैं और समय–समय पर ऊँटों द्वारा इनकी छंगाई होती रहती है। इन ओरणों को इनका वर्तमान रूप इन्हीं ऊँटों से प्रदान करवाया जा रहा है, जहाँ अन्य वन्यजीव भी स्वच्छन्द विचरण करते हैं। ऐसे परमार्थ कार्यों से आमजन में काफी विश्वास जगा है तथा ओरण और इससे जुड़े ऊँट पालन के ऐसे प्रयास द्वारा जैसलमेर के स्थानीय प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र के साथ जोड़कर पेश करने की दिशा में एक उम्मीद की किरण जगने के समान माना जा रहा है और यह बेहद उत्साहवर्धन करने वाला है कि इस पुण्य कार्य में विभिन्न बुद्धिजीवी लोग हमारे साथ जुड़ने लगे हैं। सभी का नाम लिया जाए तो सूची बहुत लम्बी होगी परंतु इन्ही में से प्रमुख रूप से जैसलमेर के श्रीमान पार्थ जगाणी जो पिछले चार वर्षों से जैसलमेर में जैविक कृषि व खेतों पर मरुस्थलीय पारिस्थितिक तन्त्र को सुरक्षित रखने का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। दूसरी ओर भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर का उष्ट्र प्रजाति के विकास व संरक्षण हेतु विशेष योगदान प्राप्त हो रहा है। भारत सरकार का यह संस्थान पिछले लगभग डेढ़ दशक से उष्ट्र पालन व्यवसाय को बदलते परिदृश्य को ध्यान में रखकर इसे विशेषकर डेरी व्यवसाय के रूप में परिणत करने हेतु प्रयत्नशील है। केन्द्र सतत रूप से न केवल ऊँटनी के दूध उत्पादों को नए–नए रूपों में विकसित कर रहा है अपितु इस दूध की औषधीय उपयोगिता को भी वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित कर रहा है। केन्द्र का मानना है कि इस प्रदेश में ऊँट पर्यटन व्यवसाय को बढ़ावा देने हेतु जैसलमेर जिला अग्रणी तौर पर आता है तथा यदि ऊँट प्रजाति के इस पहलू की लोकप्रियता के साथ ऊँटनी के दूध को शामिल किया जाए तो इससे न केवल ऊँट के महत्व में बढ़ोत्तरी होगी बल्कि इस व्यवसाय से जुड़े लोगों की आमदनी में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। केन्द्र इस हेतु ऊँट पालकों आदि को अपने संस्थान के साथ–2 बाहरी स्तर पर भी विभिन्न गतिविधियों व कार्यक्रमों के माध्यम से प्रशिक्षित व प्रोत्साहित कर रहा है।

संस्थान व अन्य सहयोगियों द्वारा प्रदत्त सहयोग को यदि समन्वित रूप से देखा जाए तो ऊँट पालन को संगठित व्यावसायिक डेयरी के रूप में विकसित करने से जैसलमेर क्षेत्र के किसान न सिर्फ अच्छी आय अर्जित कर सकते हैं अपितु पर्यावरण संरक्षण व कृषि में समय–समय पर आने वाली समस्याओं से होने वाले नुकसान से भी बच सकते हैं। क्षेत्र के किसानों व पशुपालकों को इस ओर प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है तथा संगठित रूप में आगे आकर इस व्यवसाय को अपनाने की जरुरत है। मधुमेह, क्षय रोग, ऑटिज्म आदि अनेक बीमारियों के प्रंबधन में कारगर ऊँटनी के दूध की औषधीय उपयोगिता को बढ़ाने के लिए एक मॉडल उष्ट्र डेयरी स्थापित करना बेहद जरुरी है। इसी विषय व पावन सोच के साथ जैसलमेर में साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं।

श्री देगराय उष्ट्र संरक्षण संस्था में ऊँटों का टोला

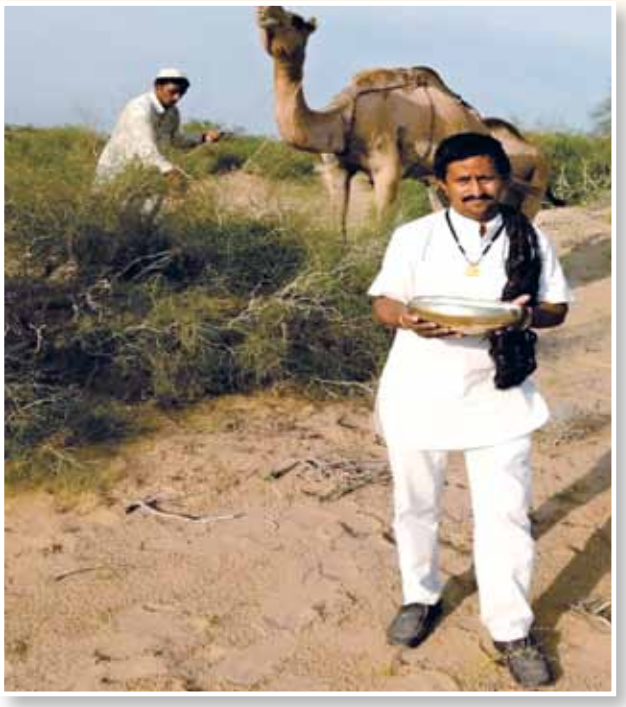

ऊँटनी से प्राप्त ताजा दूध

उम्मीद है जल्द ही ऐसे भागीरथी प्रयासों से जैसलमेर उष्ट्र डेयरी के क्षेत्र में यह व्यवसाय, नवाचार बन कर उभरेगा और उष्ट्र प्रजाति के विकास व संरक्षण में 'मील का पत्थर' साबित होगा।

दूध से उत्पन्न बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक समीक्षा

अमर सिंह मीना[1], राजीव कुमार[2], एस. एस. मिश्रा[3], अरूण कुमार[4], ध्रुव मालाकार[5] एवं एस. डे[5]

[1]वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [3,5]प्रधान वैज्ञानिक, [4]विभागाध्यक्ष

[1–4]भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर (राजस्थान)

[5]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

दूध में उपस्थित प्रोटीनों से उत्पन्न बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का मानव स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव होने के कारण विभिन्न स्वास्थ्यकारी डेयरी उत्पादों के निर्माण की अपार संभावनायें हैं। वर्तमान में मानव के खानपान के कारण होने वाले असंक्रामक बीमारियों (जैसे मोटापा, हृदय से संबंधित एवं डायबिटीज आदि) को बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स के उपयोग से नियंत्रित किया जा सकता हैं। दुधारू पशुधन गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, एवं ऊँटनी के दूध से विभिन्न प्रकार की क्रियात्मक गुणकारी बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स प्राप्त किया जा सकता है। जिसमें मानव शरीर के रक्त के थक्के को रोकने वाली, विभिन्न प्रकार के विषैले कारकों के प्रभाव को विफल करने वाले गुण होते हैं। जैसे ज्यादातर बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स प्रतिरक्षी तंत्र, आन्त्र एवं पेट, हारमोनल एवं तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करती हैं। कैंसर, ह्रड्डियो का कमजोर होना, अधिक रक्तचाप एवं अन्य विकारों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। दूध से बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स को अलग करने के लिए प्लाज्मा आधारित एवं क्रोमेटोग्राफी विधियों का विकास हुआ हैं। गाय के दूध के प्रोटीनों की बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की पहचान तथा मानव स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव पर बहुत काम हो चुका है, अन्य पशुधन के दूध की बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स पर काम अभी तेजी से चल रहा है। ऐसे पेप्टाइड्स के औषधीय गुणों का पता लगाया जा रहा हैं जिससें भविष्य में व्यापारिक स्तर के लिए मानव स्वास्थ्य लाभकारी पोषण गुणों युक्त औषधीय बायोएक्टिव पेप्टाइड्स आधारित डेयरी उत्पादों का निर्माण किया जा सके।

भूमिका :– पशुधन के दूध में लगभग 3.5 प्रतिशत प्रोटीन होती है जिसमें लगभग 80 प्रतिशत केसीन प्रोटीन एवं 20 प्रतिशत व्हे प्रोटीन होती है। केसीन प्रोटीन को एल्फा, बीटा एवं काप्पा केसीन में बाँटा गया हैं जबकि व्हे प्रोटीन में बीटा–लेक्टोग्लोब्लिन, एल्फा–लेक्टोएल्ब्यूमिन और छोटे अन्य प्रोटीन जो कि विभिन्न जैविक क्रियाविधि में भाग लेने वाले एन्जाइम, मिनरल्स के साथ जुड़ाव वाली एवं प्रतिरक्षी प्रोटीन्स होती हैं। बहुक्रियाशील जैविक गुणों वाली दूध की पेप्टाइड्स की पहचान एवं उनकी मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी या हानिकारक प्रभाव का पता किया जा चुका है। इन बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का मानव शरीर क्रिया विज्ञान एवं शरीर के मेटाबोलिज्म पर सकारात्मक प्रभाव हैं। ये पेप्टाइड्स दूध की प्रोटीन्स से पाचित होने के बाद सीधा या किसी क्रियाविधि के द्वारा शरीर के मेटाबोलिज्म को प्रभावित करती हैं। बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की क्रियाविधि उसकी अमीनों अम्लों की संख्या तथा अनुक्रम पर निर्भर करती हैं। बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की अमीनों अम्लों की संख्या 2 से लेकर 20 तक हो सकती हैं। बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स दूध की प्रोटीनों (केसीन और व्हे) में एक निश्चित अमीनों अम्लों के अनुक्रम में निष्क्रिय रूप में रहती हैं अर्थात ये पेप्टाइड् उनके मूल प्रोटीन में क्रियाशील नहीं होते हैं। लेकिन मानव के पाचन तंत्र के प्रोटीन एन्जाइम के द्वारा पाचित होने पर भोजन नली में विभिन्न चयनित रिसेप्टर्स से क्रिया करके शरीर की मेटाबोलिज्म को प्रभावित करती हैं। इन बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स को जैव क्रियाशील पेप्टाइड्स के नाम से भी जानते हैं। क्योंकि ये मानव के शरीर में जैविक क्रिया विधि में लाभकारी या हानिकारक प्रभाव दिखाती है। बायोएक्टिव पेप्टाइड्स जैसे बीटा केसीन,

काप्पा केसीन, एल्फा केसीन प्रोटीन की पॉलीपेप्टाइड्स चेन में निष्क्रिय रहती हैं तथा एक से ज्यादा प्रकार के बायोऐक्टिव पेप्टाइड् अकेले बीटा या अन्य केजीन से प्राप्त हो सकते हैं।

बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पत्ति

बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स जो पशुधन के दूध से उत्पन्न होती हैं। इनको दूध की मूल प्रोटीन से अलग करने के तीन विधि हैं :–

1. **मानव के आहारनाल के एन्जाइम (इन–विवो):–** यह क्रियाविधि दूध को मानव के द्वारा ग्रहण करने पर उसकी आहारनाल के पाचन एन्जाइम द्वारा पूरी की जाती हैं। मानव की आहार नाल में प्रोटीन को पाचित करने वाले एन्जाइमों (पेप्सिन, ट्रीप्सिन, काइमोट्रीप्सिन) के द्वारा दूध की केसिन तथा व्हे प्रोटीन को छोटे–छोटे अमीनों अम्लों के टुकड़ों में तोड़ा जाता है। ये 2–20 अमीनों अम्लों के लम्बे पेप्टाइड्स होते हैं। इनका मुख्य कार्य विभिन्न् जीवाणु की वृद्धि को रोकना (एन्टीबैक्टीरियल), प्रतिरक्षी तंत्र में बदलाव, अधिक रक्तचाप का नियंत्रण एवं तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव है।
2. **जीवाणु किण्वन क्रियाविधि (इन–विट्रो):–** बहुत से लेक्टिक अम्ल जीवाणु (लेक्टोकोकस लेक्टिस, लेक्टोबैसिलस हेल्वेटिकस) द्वारा किण्विन दूध की प्रोटीन से बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति होती हैं। इसमें ये जीवाणु प्रोटीन को पाचन करने वाले एन्जाइम के संश्लेषण करते हैं। जिससे केसीन एवं व्हे प्रोटीन में से छोटे–छोटे पेप्टाइड्स की उत्पति होती हैं। जैसे लेक्टोबैसिलस हेलवेटिकस जीवाणु द्वारा बीटा एवं काप्पा केसिन प्रोटीन से तीन अमीनों अम्ल, लम्बी (वैलीन–प्रोलीन–प्रोलीन एवं आइसोलूसिन–प्रोलीन –प्रोलीन) पेप्टाइड्स की उत्पति होती है जो मानव के उच्च रक्तचाप (एन्टी हाइपरटेन्शन) को रोकने में लाभकारी है। इसी प्रकार विभिन्न जीवाणुओं द्वारा अन्य केसीन एवं व्हे प्रोटीन के पाचन से विभिन्न जैविक गुणों से युक्त पेप्टाइड्स का निर्माण होता हैं।
3. **एन्जाइम क्रियाविधि** :– एन्जाइम द्वारा दूध की प्रोटीन के पाचन से भी पेप्टाइड्स की उत्पति होती हैं। भोजन की प्रोटीन को पचाने वाले एन्जाइमों के समूह को शुद्ध रूप में या किसी अन्य एन्जाइम के साथ मिलाकर छोटे–छोटे बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति होती हैं। पेप्सिन, ट्रीप्सिन, काइमोट्रीप्सिन एवं जीवाणु तथा कवक से प्राप्त प्रोटीन एन्जाइम का उपयोग करके दूध की बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति की जा सकती हैं।

बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति को प्रभावित करने वाले कारक

पशुधन जैसे गाय, भैंस, बकरी, भेड़ एवं ऊँटनी के दूध में पाये जाने वाले केसीन प्रोटीन के प्रकार तथा उनके आनुवंशिक विकल्पों की पहचान करना जरूरी है। क्योंकि पशुधन के दूध में केसीन प्रोटीन के प्रकार एवं मात्रा में विभिन्न प्रजातियों के सदस्यों में आनुवंशिक बहुरूपता मिलती हैं। जिसके कारण दूध में केसीन प्रोटीन की संख्या एवं मात्रा में अन्तर मिलता हैं। जिससे दूध के तकनीकी गुण, पोषण गुण तथा बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति भी प्रभावित होती हैं। उदाहरण स्वरूप गाय में एकल अमीनों अम्ल के बदलाव से बीटा केसोमोर्फिन–7 बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स की उत्पति में वृद्धि होना, जिसके आधार पर गाय के दूध को ए1/ए2 मिल्क में बाँटा जाता हैं। ए1 दूध मानव स्वास्थ्य के लिए आधुनिक जीवनशैली की बीमारियों को बढ़ाता हैं। इसलिए पशुधन के दूध में पाई जाने वाली प्रोटीनों की जीन में आनुवंशिक विकल्पों का पता लगाना जरूरी हैं। इससे पशुधन के दूध से मानव स्वास्थ्य लाभकारी विकल्पों का चुनाव करके बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स का मानव स्वास्थ्य में योगदान

1. **एन्टीमाइक्रोबियल पेप्टाइड्स** :– बहुत से रोगजनक जीवाणुओं (साल्मोनेला, ई. कोलाई, स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफाइलोकोकस, लिस्टीरिया, क्लोस्ट्रीडियम, हेलीकोवेक्टर आदि) के संक्रमण को मानव के शरीर में दूध की प्रोटीन से उत्पन्न पेप्टाइड्स रोकते हैं। जिससे मनुष्य में इन रोगजनक जीवाणु की वृद्धि नहीं होने से स्वास्थ्य लाभ मिलता है। जैसे एल्फा एस1 केसीन एवं काप्पा केसीन दूध की प्रोटीन का काइमोट्रीप्सिन एन्जाइम के पाचन से एन्टीबैक्टीरियल

पेप्टाइड्स की उत्पति होती है, जो बैसिलस सबटिलिस, डीप्लोकोकस न्यूमोनिया, स्ट्रेप्टोकोकस पयोजन्स आदि रोगजनक जीवाणुओं के संक्रमण को रोकता हैं। बीटा–केसीन से उत्पन्न पेप्टाइड्स भी एन्टेरोकोकस एवं बैसिलस जीवाणु की वृद्धि को अवरूद्ध करता हैं। इसी प्रकार विभिन्न केसीन प्रोटीन आधारित पेप्टाइड्स भी हेपेटाइटिस–सी, पोलियो वायरस, रोटावायरस आदि वायरस के प्रति एन्टीवायरल गतिविधि रखता हैं।

2. **इम्यूनोमाडूलेटरी पेप्टाइड्स** :– केसीन एवं व्हे प्रोटीन से उत्पन्न बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स मानव शरीर में लिम्फोसाइट, मैक्रोफेज, फैगोसाइटिक इम्यून कोशिकाओं की गतिविधि को बढ़ाते हैं, एन्टीबॉडी का निर्माण करते हैं एवं साइटोकाइन का स्त्राव बढ़ाते हैं। पेप्टाइड्स प्रतिरक्षी तंत्र की बहुत–सी कोशिकाओं को उत्तेजित करके कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकते हैं। गाय की बीटा केसिन प्रोटीन से उत्पन्न पेप्टाइड्स (63–68) एवं (191–193) इन विट्रो कोशिका कल्चर में फैगोसाइटिक कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं तथा ये पेप्टाइड्स चूहे में क्लेब्सिला न्यूमोनिया जीवाणु की भी वृद्धि को रोकता हैं। केसिनोमोर्फिन पेप्टाइड्स मानव शरीर में लेक्टिक अम्ल जीवाणु की वृद्धि को बढ़ाता हैं। जिससे आन्त्र में रोगजनक जीवाणुओं का संक्रमण रूक जाता हैं। काप्पा केसीन एवं एल्फा–लेक्टोएल्यूमिन से उत्पन्न पेप्टाइड्स भी एड्स वायरस के खिलाफ प्रतिरक्षा थैरेपी का काम करता हैं।

3. **एन्टीहाइपरटेन्शिव पेप्टाइड्स या एन्जियोटेन्शिन कन्वर्टिंग एन्जाइम (ACE)** :– इन्हिबीटरी पेप्टाइड्स एन्जियोटेन्शीन कन्वर्टिंग एन्जाइम (ACE) एक पेप्टीडायल डाई पेप्टीडेज एन्जाइम हैं जो किसी किनारे की प्रोटीन को तोड़ता हैं जिससे एन्जियोटेन्शिन–1 को क्रियाशील पेप्टाइडस् हार्मोन एन्जियोटेन्शिन–2 में बदलता है, जिससे मानव शरीर में एल्डोस्टेरॉन का स्त्राव बढ़ जाता है, जिसके कारण शरीर में सोडियम की मात्रा बढ़ जाती है, जो उच्च रक्त चाप को बढ़ाता है। किन्तु एन्टीहायपरटेन्शिव पेप्टाइड्स एन्जियोटेन्शिन कन्वर्टिंग एन्जाइम (ACE) की गतिविधि को रोकता हैं जिससे उच्च रक्तचाप को नियंत्रण में किया जा सके। एसीई (ACE) के अवरोधक दो या तीन अमीनो अम्ल पेप्टाइड्स होते हैं जिनके किनारे पर प्रोलीन, लाइसिन या आर्जिनिन होते हैं। व्हे प्रोटीन के एल्फा–लेक्टोएल्ब्यूमिन और बीटा–लेक्टोग्लोब्लिन से भी एन्टीहाइरटेन्शिव पेप्टाइड्स उत्पन्न होते हैं। बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स जो एसीई अवरोधक का कार्य करती हैं, ज्यादातर गाय एवं मानव की केसीन प्रोटीन से अलग की गई हैं। पेप्टाइड्स (ग्लूटामिक–टायरोसीन– मिथियोनीन–प्रोलिन–वैलिन–फीनाइल एलानिन–प्रोलिन–लाइसिन एवं टायरोसीन–प्रोलिन –वैलिन–ग्लूटामिक–प्रोलिन–फीनाइलएलानिन–था योनिन–ग्लूटामिक) केसीन प्रोटीन से उत्पन्न होती हैं जो एन्टीहाइपरटेन्शिव पेप्टाइड्स कहलाती हैं। इसी प्रकार दूध की केसीन एवं व्हे प्रोटीन से ऐसी एन्टीहाइपरटेन्शिव पेप्टाइड्स के उपयोग से औषधीय गुणों युक्त डेयरी उत्पादों के निर्माण से रासायनिक दवाइयों के उपयोग से बचा जा सकता है।

4. **ओपियोड पेप्टाइड्स**:– इस तरह के पेप्टाइड बीटा केसिन के एन्जाइम पाचन से प्राप्त किये जा सकते है। जैसे ए–1 मिल्क में बीटा–केसिमार्फिन–7 पेप्टाइड्स ज्यादा मात्रा में उत्पन्न होता हैं जो कि मानव के तंत्रिका तंत्र एव अन्य जैविक क्रिया को प्रभावित करता हैं। जिससे मानव स्वास्थ्य में डायबिटीज, हृदय उत्पन्न संबंधित रोग, आदि की संभावनाए बढ़ जाती हैं। इससे बच्चों में नींद ज्यादा आना एवं शारीरिक रूप से सुस्ती भी बढ़ती हैं। इसलिए काप्पा केसीन से उत्पन्न केसोसीन–B (टायरोसीन–प्रोलिन–टायरो सीन–टायरोसीन) पेप्टाइड्स ओपियाड पेप्टाइड्स की क्रियाशीलता को अवरूद्ध करते हैं। गाय में काप्पा केसीन से केसोसीन A एवं B पेप्टाइड्स की पहचान एवं व्याख्या की जा चुकी हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

5. **एन्टीआक्सीडेंट पेप्टाइड्स** :– मानव शरीर की जैविक मेटावोलिज्म में विभिन्न कारकों के द्वारा क्रियाशील मुक्त आयन बनते हैं, जो शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाएं डीएनए, लिपिड, प्रोटीन एवं एन्जाइम से क्रिया करके हानिकारक रूप से शरीर को प्रभावित करते हैं। इसके कारण विभिन्न प्रकार के रोग कैंसर, जोड़ों का दर्द, डायबिटीज, हड्डी का कमजोर होना

आदि हो जाते हैं। दूध की केसीन प्रोटीन से 5–11 हाइड्रोफोविक अमीनो अम्लों युक्त ऐसे पेप्टाइड्स उत्पन्न होती हैं जो शरीर के अन्दर पैदा हुई मुक्त आयन को खत्म कर देती हैं।

केसीन पेप्टाइड्स (टायरोसीन–फीनाइलएलानिन–टायरोसीन–प्रोलिन–ग्लूटामिक–ल्यूसिन) भी मानव शरीर में मुक्त आयन का भक्षण करते हैं। इसी प्रकार बीटा–लेक्टोग्लोब्लिन प्रोटीन से भी एन्टीआक्सीडेंट पेप्टाइड्स उत्पन्न होते हैं। विटामिन्स C एवं E एवं पादपों के द्वितीयक उपापचय भी मानव शरीर में एन्टीआक्सीडेंट कारकों का कार्य करते हैं।

निष्कर्ष

पशुधन के दूध की प्रोटीनों में निष्क्रिय रूप से छुपे छोटे–छोटे पेप्टाइड्स का विभिन्न पाचन एन्जाइम के उपयोग से पता करना आवश्यक हैं। क्योंकि इनमें मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी एवं कुछ हानिकारक प्रभाव भी होते हैं। दूध के बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स मानव शरीर के पाचन तंत्र, हृदय से संबधित, प्रतिरक्षी तंत्र, तन्त्रिका तंत्र, हड्डी की वृद्धि एवं शरीर के वजन को भी नियंत्रित करते हैं। गाय के दूध के विभिन्न प्रोटीन से प्राप्त पेप्टाइड्स की पहचान एवं व्याख्या प्रयोगशाला जीव पर हो चुकी हैं। अतः पशुधन के दूध की मुख्य केसीन एवं व्हे प्रोटीन के जीनोमिक डीएनए में मौजूद विभिन्न आनुवंशिक विकल्पों की पहचान जरूरी हैं तथा उनसे बनने वाली प्रोटीन की पॉली पेप्टाइड के अनुक्रम की भी पहचान जरूरी है। जिससे उनसे बनने वाली पेप्टाइड्स की पहचान तथा उनका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सके। साथ ही हानिकारक पेप्टाइड्स की प्रोटीन को आनुवंशिक चिन्हक के सहयोग से पशुधन की विभिन्न प्रजातियों से हटाया जा सके। जिससे भविष्य में गाय, भैंस, बकरी, भेड़ एवं ऊँटनी के दूध की प्रोटीन से उत्पन्न बायोऐक्टिव पेप्टाइड्स के उपयोग से मूल्य संवर्धित क्रियाशील डेयरी उत्पादों का निर्माण किया जा सके। जो मानव के लिए पोषणकारी होने के साथ औषधीय गुणों से युक्त भी हो। यह भविष्य में दूध व्यवसाय से जुड़े किसानों की आमदनी बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा।

करभ अठारहवें अंक (वर्ष-2020) के लिए लेख/रचना आमन्त्रण

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर की हिन्दी वार्षिक पत्रिका 'करभ' का प्रकाशन प्रति वर्ष किया जाता है। उष्ट्र विकास एवं संरक्षण, पशु एवं कृषि विज्ञान, अन्य पशुपालन, उद्यमी, हितधारक क्षेत्रों से संबद्ध लेखकों से अनुरोध हैं कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशुपालकों, किसानों, पशु वैज्ञानिकों एवं विद्यार्थियों के लिए उपयोगी लोकप्रिय लेख/शोध लेख, भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र की राजभाषा इकाई को ए–4 आकार के पृष्ठों पर टंकित करवाकर नवम्बर, 2020 तक या इससे पूर्व भेज दें। छायाचित्रों की जेपीजी फाइल सहित अपने लेख उक्त पते पर अथवा ई–मेल nrcckarabh@gmail.com पर भेजने का भी अनुरोध है। सभी लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित निम्नलिखित प्रमाण–पत्र लेख के साथ अवश्य भेजें :

''प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख (लेख का शीर्षक, लेखकों के नाम व पदनाम विभाग/संस्था आदि सहित) एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा शोध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया है।''

संपादक मंडल

उष्ट्र स्वास्थ्य में उपयोगी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों का तर्काधार

एफ.सी. टूटेजा[1], आर.के.सावल[2], विजय सिंह देवल[3], अविनाश शर्मा[4] एवं नेमीचन्द बारासा[5]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]निदेशक, [3]शोधार्थी, [4]अनुसंधान अध्येता,
[5]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
[1,2,4,5]भाकृअनुप – राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर
[3]राजस्थान पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

प्रागैतिहासिक काल से ही रोगों के उपचार के लिए सभी महाद्वीपों के लाखों–करोड़ों लोगों ने स्थानीय अर्थात् देसी पेड़–पौधों का इस्तेमाल किया है। मरूस्थल का जहाज माना जाने वाला 'ऊँट' शुष्क प्रदेश के सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब भी ऊँट बीमार होते हैं तो ऊँट पालक खुद या फिर परंपरागत पशु चिकित्सक की सहायता से, अपनी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों द्वारा ऊँटो की विभिन्न बीमारियों का इलाज करते हैं। उष्ट्र स्वास्थ्य में उपयोगी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों का वैज्ञानिक विश्लेषण इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पद्धति से इलाज करने के तरीको एवं उपयोग में लाये जाने वाले पदार्थों के बारे में जानकारी एकत्र करने से पता चलता है कि इन चिकित्सा पद्धतियों द्वारा ऊँटों में त्वचा रोग (कीड़े वाले घाव, नाक का घाव, काठी का जख्म, लेवटी का जख्म, नाभि संक्रमण, खुजली, ठिकरिया तथा अन्य त्वचा संक्रमण), पाचन तंत्र (भूख न लगना, अपच, पेट बंद पड़ना, पेट में दर्द, कब्ज, दस्त, आफरा) अस्थि माँसपेशी तंत्र (गठिया, मांसपेशियो की कमजोरी, कुमरी, अस्थि भंग तथा गहरा घाव) व अन्य विकारों जैसे की बुखार, खांसी, नाक बहना, न्यूमोनिया, रक्त स्त्राव, थनैला, एक्टिनोबेसीलोसिस, जेर न गिरना, पेट के कीड़े, बाहय परजीवी, आँख संक्रमण, धूप आघात, बच्चेदानी का बाहर आना तथा अन्य कई बीमारियों का उपचार एवं कुछ बचाव के तरीको में मुख्यतः नर ऊँटो में पौरुष्य, ताजा ब्याई ऊँटनियो में थनैला रोग की रोकथाम, उष्ट्र को मक्खी–मच्छर से बचाने व टोरडियों के स्वास्थ्यवर्धन व बीमारी से बचाव के लिए उष्ट्र पालक विशेष कर परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों का इस्तेमाल करते हैं। परंपरागत तरीके से उपचार हेतु उपयोग में लाये जाने वाले पदार्थ –पादप, प्राणी, अन्य कुदरती तथा कुछेक कृत्रिम स्त्रोतों से उपलब्ध होते हैं। कुछ पदार्थो का अधिक इस्तेमाल उस जगह पर ऐसे पदार्थ का कुदरती या आसानी से मिलने पर निर्भर करता है। किसी चिकित्सा पद्धति का अधिक इस्तेमाल उसकी गुणवता अथवा रोग निवारण क्षमता को भी दर्शाता है। परंपरागत औषधियों को बनाने व लगाने का तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि किस मर्ज का इलाज करना है। दवा की खुराक रोग के अनुसार बदलती है, विशेषकर त्वचा रोगों में, जबकि दैहिक तरीके से दवा देने में पूर्ण विकसित पशु के हिसाब से औसतन लिया जाता है।

चूंकि नई चिकित्सा पद्धति की बहुत–सी दवाइयां परंपरागत चिकित्सा के आधार पर विकसित की गई हैं, इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि इन सभी चिकित्सा पद्धतियों को दस्तावेज कर प्रामाणिक बनाया जाए तथा इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए ताकि परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों के तर्काधार की जानकारी प्राप्त हो सके। उष्ट्र चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाले कुछ पदार्थ जो प्रकाशित हो चुके हैं, ये विभिन्न गुणों से भरपूर हैं।

सारकोप्टिक मेंज (पांव, खुजली) ऊँट की सबसे आम स्वास्थ्य समस्याओं में से एक है। 1980 के दशक में इवेर्मेक्टिन दवा आने से पहले, इस बीमारी का इलाज आमतौर पर सल्फर, करंज का तेल, सरसों का तेल, तारामीरा का तेल आदि से किया जाता था। पश्चिमी सहारा में सहरावी पशुपालकों द्वारा मेंज और डर्माटोमायकोसिस के उपचार के लिए वनस्पति तेलों या वसायुक्त पदार्थों के

उपयोग का वर्णन किया गया है। राजस्थान में उष्ट्र पालक सरसों का तेल जख्मों पर लगाने के साथ–साथ लहसुन की चटनी भी खिलाते हैं। शोध से पता चलता है कि लहसुन में एंटीऑक्सिडेंट होते हैं जो संक्रमण की निकासी प्रक्रिया में मदद कर रोग निवारण करते हैं।

राजस्थान में टोरडियों में ठीकरिया (स्किन कैनडिडीयेसिस) के उपचार के लिए बाजरा के आटे और नमक का इस्तेमाल किया जाता है। शोध से पता चला है कि बाजरा में एंटी–फंगल प्रोटीन के रूप में सिस्टीन प्रोटीएज इनहिबिटर होता है। शोध कर टोरडियों में ठीकरिया (स्किन कैनडिडीयेसिस) उपचार के लिए सरसों के तेल में 6 प्रतिशत सल्फर का उपयोग सही पाया गया। एक अन्य शोध में यह पाया गया की सरसों के तेल में जीवाणुरोधी और फफूंदरोधी गुण होते हैं।

बाह्य परजीवी (जूँ, चीचड़) के लिए उष्ट्र पालक नीम और तम्बाकू के पत्तों का उपयोग करते हैं। तंबाकू के अर्क की प्रभावकारिता इसमें विद्यमान निकोटीन के कारण होती है। हुक्का एक स्वदेशी धूम्रपान पाइप है जिसमें एक बर्तन होता है जिसमें पानी भरा होता है। हुक्के का पानी बाहरी परजीवियों को मारने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

नीम और तम्बाकू का उपयोग हेल्मिंथियासिस के लिए भी किया जाता है। कुछ वैज्ञानिको ने सुझाव दिया कि कम–से–कम कृमि संक्रमण महामारी के दौरान, नीम पत्तियां कृमिनाशक के वैकल्पिक गैर–रासायनिक कार्बनिक स्रोत के रूप में एक भूमिका निभा सकती हैं।

भूख न लगना, कब्ज, बुखार, निमोनिया जैसी बीमारियों में अजवायन का इस्तेमाल किया जाता है। अजवायन के तेल में मौजूद थायमोल ने 900 पीपीएम सांद्रता पर डर्माटोफाइट्स के खिलाफ फंगल विषाक्तता का प्रदर्शन किया। इस तेल द्वारा जीवाणुरोधी गतिविधि भी प्रदर्शित की गई। आजवायन में कृमिनाशक गुण भी पाये गए हैं।

काली जीरा का इस्तेमाल ठंड लगना, निमोनिया, थनैला और एक्टिनोबैसिलोसिस जैसे संक्रामक प्रकृति के रोगों में एक उपचार घटक है। शोधकर्ताओ को काली जीरा में जीवाणुरोधी, दर्दनिवारक तथा सूजन निवारक गुण मिले हैं।

राजस्थान में उष्ट्र पालक थनैला रोग के उपचार के लिए लहसुन, काली जीरा और मक्खन मिलाकर ऊँटनी को खिलाते हैं लेकिन पश्चिमी सहारा के सहरावी पशुपालक लहसुन और प्याज से बने मलहम का लेप, ऊँटनी की लेवटी पर लगाते हैं।

ऊँटों में दस्त के इलाज के लिए राजस्थान में मेथी को खिलाया जाता है। यही इलाज दस्त, अपच और पेट दर्द के लिए पश्चिमी सहारा में सहरावी पशुपालकों द्वारा भी किया जाता है। शोधकर्ताओं के अनुसार मेथी में रोग प्रतिरोधक क्षमता सुधार, सुजन निवारक, ज्वरनाशक और अमाशय संरक्षण के गुण हैं।

बुखार के इलाज के लिए किसान आमतौर पर सोंठ (सुखी अदरक) का उपयोग करते हैं। सोंठ में काफी मात्रा में एंटीऑक्सिडेंट पाए जाते हैं। सोंठ में रोगाणुरोधी व रोग प्रतिरोधक क्षमता सुधार के गुण भी पाए गए हैं।

राजस्थान में कब्ज के इलाज के लिए ऊँटो को अरंडी के बीज खिलाये जाते हैं, जबकि पश्चिमी सहारा में थनैला रोग के लिए भी यही उपचार दिया जाता है। पौधे में कई लाभकारी गुण हैं, जैसे कि एंटीऑक्सिडेंट, एन्टीहिस्टामिनिक, एंटीनोसाइसेप्टिक, रोग प्रतिरोधक क्षमता सुधार, सुजन निवारक, कीटनाशक और कई अन्य औषधीय गुण पाए गए।

गठिया के इलाज के लिए पिपलामोल बीज का उपयोग किया जाता है। पिपलामोल के अर्क में ओपिओइड मिले जिसकी गैर–स्टेरायडल दर्द निवारक क्षमता है।

शीशम की पत्तियों का उपयोग धूप आघात और दस्त के उपचार के लिए किया जाता हैं। शीशम में सूजन निवारक, ज्वर नाशक और दर्द नाशक गुण मिले हैं।

सत्यानासी का उपयोग ऊँटों में पेट बंद और कब्ज के इलाज के लिए किया जाता है। सत्यानासी भ्रांतिकारी व अंतड़ीमरोड़ नाशक है।

आक के दूध का उपयोग कीड़े वाले घाव के इलाज के लिए किया जाता है। आक के दूध में ऐसे प्रोटीन होते हैं जिसमें सूजन निवारक, एंटी–नोसिसेप्टिव, चयनात्मक साइटोटॉक्सिक, कैंसर के प्रति गुणकारी और लार्विसाइडल गुण होते हैं।

हल्दी पाउडर और तेल (तिल, सरसों) का उपयोग काठी घाव के उपचार के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें एंटीकैंसर, रोगाणुरोधी, सूजन निवारण जैसे गुण होते हैं।

कड़वे तुम्बा का उपयोग ऊँट में हेलमंथियासिस के उपचार व् पाचन में सुधार के लिए किया जाता है। इसमें रोगाणुरोधी, सूजन निवारक, स्थानीय संवेदनाहारी और लार्विसाइडल गुण पाए जाते हैं।

इसी तरह कई अन्य पदार्थ जो किसान इस्तेमाल करते हैं, विभिन्न गुणों से भरपूर होते हैं, जैसे कि सौंफ, बड़ी इलायची, लौंग, धतुरा में जीवाणु प्रतिरोधक क्षमता पाई गई। अनार का छिलका दस्त रोग में उपयोगी पाया गया है। अनार के छिलके, लौंग व जायफल में एन्टीओक्सीडेंट तत्व पाए जाते हैं। जायफल में एंटीअलर्जीक गुण हैं। मेहँदी में घाव उपचार की क्षमता है। हरड़, बरड़, आवंला तीनों त्रिफला चूर्ण में होते हैं और यह चूर्ण सूजननाशक, दर्दनाशक, ज्वरनाशक व एन्टीऑक्सीडेंट का काम करता है।

आमतौर पर हर्बल उपचार के लिए खुराक खास मायने रखती है। प्रभावकारिता और सुरक्षित खुराक को सुनिश्चित करने के लिए अधिकांश औषधि की सघनता से जांच होती है। जड़ी–बूटियों के मानकीकरण के कई तरीकों को लागू किया जा सकता है, हालांकि एक ही प्रजाति के पौधे के विभिन्न नमूनों में रासायनिक सामग्री अलग हो सकती है।

विकासशील देशों में स्वास्थ्य के लिए पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों का उपयोग बहुतायत देखा गया है। विकसित देश भी वनस्पतिक एक्सट्रेक्ट अथवा वनस्पति आधारित अनेकों दवाएं बना चुके हैं। वर्ष 1940 में प्रतिजैविक दवा (एंटीबायोटिक) आने के बाद भी, विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान अनुसार विश्व की तीन चौथाई जनसंख्या बीमारियों के उपचार में औषधीय वनस्पतियां तथा अन्य पारंपरिक दवाओं का इस्तेमाल करती है। इस शताब्दी में हम "जीन–थेरैपी" की संभावनाओं की तरफ अग्रसर है, फिर भी विश्वभर में हर्बल दवाइयों का बाजार 7–15 प्रतिशत की वार्षिक बढ़ोतरी कर रहा है। यह दवाएं पहले अशोधित निष्कर्ष के रूप में रही हैं तथा अब नई दवा खोज (नावेल ड्रग डिस्कवरी) का आधार हैं। कई विकसित देश जैसे कि जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका एवं चीन पौधों के प्रमाणित नैदानिक प्रभाव वाले मानक वनस्पतिक निष्कर्षो का पंजीकरण हर्बल दवा अथवा खाद्य अनुपूरक के रूप में करवा रहे हैं। यह भी तथ्य है कि भारतदेश एक विशाल प्राकृतिक औषधीय वनस्पति का मूल स्रोत्र है लेकिन असन्तोषजनक गुणवत्ता नियंत्रण एवं पंजीकरण प्रणाली के कारण हम विश्व बाजार में इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

भारत औषधीय वनस्पति में एक सम्पन देश है तथा प्रजातीय, आवासीय एवं अनुवांशिक जैव–विविधता यहाँ पाई जाती है। हर तरह की कृषि जलवायु यहाँ पर होती है। छोटी बीमारियों के उपचार एवं निजी स्वास्थ्य रख–रखाव में हर्बल उपचार अधिक प्रचलन में लाया जाता है तथा बाजार की मांग इतनी है कि कई पौधे विलुप्त होते जा रहे हैं, इसलिए इस ज्ञान को बचाए रखने के लिए तुरंत दस्तावेजीकरण की जरुरत है। भारत में पाई जाने वाली कुल 17,000 वनस्पति प्रजातियों में से केवल 2000 प्रजातियाँ ही आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध इत्यादि उपचार प्रणाली में उपयोग में ली जाती हैं। एक अनुमान अनुसार विश्व की 250000 वनस्पति प्रजातियों में से लगभग आधी उष्ण–कटिबंधीय जंगलों में मिलती हैं। इनसे प्राप्त प्राकृतिक उत्पाद अथवा रसायनिक पदार्थ, बहुमूल्य नई दवा खोजों का आधार बनते हैं। नए रसायनिक पदार्थ खोजने के अवसर अत्यधिक हैं क्योंकि अब तक सिर्फ एक प्रतिशत उष्ण–कटिबंधीय पौधों की औषधीय क्षमता पर ही अध्ययन हो सका है।

भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति में मानव औषधि के अलावा अन्य जरुरी आयाम जैसे कि पशु चिकित्सा भी सम्मिलित है। ड्रग एवं कास्मेटिक एक्ट में आयुर्वेद की परिभाषा में पशु चिकित्सा को शामिल किया गया है। प्राचीन चिकित्सा प्रणाली में पशु चिकित्सा सम्बंधित कुछ विश्वसनीय किताबें भी उपलब्ध हैं– जैसे कि नकुल संहिता, पल्कप्या शास्त्र, गौ–आयुर्वेद, हस्ती आयुर्वेद, बज नामा इत्यादि।

हर्बल सूत्रण दवाएं एवं पशु खाद्य अनुपूरक को पसंद किया जाता है चूँकि इनका बेहतरीन प्रभाव, सहनीय, कम दुष्प्रभाव एवं विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं (गर्भाशय, दुधारू) में सुरक्षित, दवा प्रतिरोधकता एवं अवशेष की दिक्कत का न होना एवं पर्यावरण–अनुकूल होते हैं।

प्रणालीगत पद्धति या आयुर्वेद का संपूर्णता विज्ञान हर्बल दवा बनाने का दूसरा महफूज एवं वैज्ञानिक तरीका है जो रिवर्स औषध विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित है। इसके अनुसार विभिन्न कोशिकाएं एवं बीमारी पथ, बीमारी होने का कारण होते हैं। एक तत्व बीमारी के कई लक्ष्य (टारगेट) को

ठीक करने में नाकामयाब हो सकता है, इसलिए बीमारियों के उपचार के लिए मिश्रित तत्वों की जरुरत पड़ती है। हर्बल निष्कर्ष में प्राकृतिक मिश्रित रसायन होते हैं जो एक साथ कई टारगेट पर पहुँच कर सह–क्रियाशील प्रभाव से असर करते हैं। नई तरह की बनावट वाले तत्वों की पहचान जो विशेष तरह के गुणों वाले होते हैं, नए रासायनिक वास्तविकता को दर्शाते हैं तथा दवा मानकीकरण के काम आते हैं।

ऊँट पालक परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों पर अधिक निर्भर करते हैं, इसका मुख्य कारण है उनका खुद का अनुभव, आसानी से परंपरागत चिकित्सक व उपयोग हेतु दवाओं का स्थानीय जगहों पर मिल जाना, फिर भी परंपरागत चिकित्सा पद्धति द्वारा प्रभावी इलाज न होने पर नजदीकी पशु चिकित्सिक की सलाह लेने में देरी न करें क्योंकि देरी से इलाज होने के कारण कई बार उष्ट्र अथवा अन्य पशुओं की हालत बहुत ही बिगड़ जाती है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि पशुधन मालिक उपयोगी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियो का उपयोग तब तक जारी रखेंगे जब तक उन्हें दवाओं की प्रभावकारिता, कम लागत, उपलब्धता एव दवा देने के आसान तरीके के बेहतर विकल्प नहीं मिलते।

एथनो वेटेनरी का उपयोग उन बीमारियों के समाधान प्रदान करने के लिए भी किया जाता है जिसमें प्रतिजन भिन्नता ने टीकाकरण को अवास्तविक बना दिया है और पश्चिमी दवाओं के लिए दवा प्रतिरोधी उपभेद प्रचलित हो गए हैं।

एथनो वेटेनरी और मानव एथनो मेडिसिन दुनिया के कई हिस्सों में एक जैसी है। त्रिनिदाद में एक शोध में यह पाया गया कि प्रजनन संबंधी समस्याओं के लिए महिला किसान अपने जानवरों के लिए उन्हीं पौधों का उपयोग कर रही थीं, जो कि वे अपने लिए भी इस्तेमाल करते थे।

ऊँटों में चेचक (माता) रोग के लक्षण व बचाव

शिरीष नारनवरे
वरिष्ठ वैज्ञानिक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँट भारत के उत्तर पश्चिम भाग का महत्वपूर्ण एवं बहु उपयोगी पशु है। दुनिया भर में हो रहे जलवायु परिवर्तन की वजह से ऊँटो का स्थान पशुपालन के क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऊँट ही ऐसा एक पालतू पशु है जो कि अत्यधिक ठण्ड व गर्मी वाला मौसम भी सहन कर सकता है। इस विशिष्ट गुण के बावजूद भी भारत में ऊँटो की संख्या में भारी गिरावट हो रही है।

भारत मे ऊँटो की संख्या लगभग 2.5 लाख है जिसमें से राजस्थान में सबसे अधिक लगभग 2.13 लाख तथा उसके बाद हरियाणा एवं गुजरात में ज्यादा ऊँट पाए जाते हैं। किन्तु देश में मशीनीकरण, चरागाह की कमी, शिक्षा एवं आधुनिकीकरण आदि कारणों से ऊँटों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। ऊँटो की संख्या में गिरावट के लिए उनमें विभिन्न बीमारियों से होने वाली मृत्युदर भी एक कारण है। भारत के राजस्थान प्रदेश में ही लगभग 80 प्रतिशत से अधिक ऊँट पाए जाते हैं। हालाँकि अन्य जुगाली करने वाले पशुओं की तुलना में ऊँट में विषाणु जनित रोग कम पाए जाते हैं, फिर भी ऊँटों के विषाणु जनित रोगों में चेचक अथवा माता रोग एक महत्वपूर्ण बीमारी है। चेचक एक संक्रामक रोग है, आम बोलचाल की भाषा में इसे 'माता रोग' कहते हैं तथा इस रोग का वैज्ञानिक नाम 'कैमल पॉक्स' है जो कि ऑर्थोपॉक्स, जीनस के पॉक्सविरीडी के अन्तर्गत आने वाले विषाणु के द्वारा होता है। ऊँटों में चेचक रोग का पता सबसे पहले वर्ष 1909 में भारत के पंजाब प्रदेश में लगा, हालांकि यह रोग ऊँट बहुल क्षेत्रों में होता रहा है। ऊँटों के चलवासी स्वभाव व एक ही स्थान पर पूरे झुण्ड का खान–पान होने के कारण यह रोग आसानी से स्वस्थ ऊँटों में फैल जाता है। इसके मुख्य लक्षणों में 9–13 दिनों के उष्मायन अवधि (इन्क्युबेशन पीरियड), बुखार, लिम्फ नोड्स का बढ़ना और त्वचा पर घाव होना है।

रोग संक्रमण के कारक

ऊँटों में चेचक रोग संक्रमित वातावरण द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में संचारित हो सकता है। स्वस्थ ऊँटों को प्रत्यक्ष रूप में चेचक संक्रमित ऊँटों के सीधे संपर्क (संक्रमित श्वास/खरोंच) में आने से, अप्रत्यक्ष रूप में संक्रमित चारा, पानी, मिट्टी, कपड़ा व यान्त्रिक रूप से कीट–वाहकों के द्वारा हो सकता है। यह विषाणु वातावरण में कई महीनों तक अपनी संक्रामक शक्ति बनाए रख सकता है। चेचक के विषाणु इस रोग से ग्रस्त ऊँट की त्वचा के घावों, दूध, थूक, आँख–नाक के स्राव के जरिये असंक्रमित ऊँटों में इसे फैला सकते हैं। चेचक–विषाणु के प्रकार व मौसम पर यह निर्भर करता है कि ऊँटों में चेचक गंभीर रूप में पूरे शरीर पर पाया जाए, हालांकि बहुत सारे चेचक के प्रकार यांत्रिक रूप में कीटों द्वारा प्रसारित किये जाते हैं लेकिन ऊँटों में चेचक रोग को फैलाने में इनकी सहभागिता सिद्ध करनी आवश्यक है। ऊँट पालकों के दृष्टिकोण से चेचक एक महत्वपूर्ण रोग इसलिए भी है क्योंकि इससे ऊँटों में मृत्यु, वजन का घटना व दुग्ध–उत्पादन में कमी जैसे नुकसान हो सकते हैं। ऊँटों की मृत्यु चेचक–विषाणु के प्रकार, आंतरिक कारक जैसे ऊँट की आयु, रोग–प्रतिरोधक क्षमता, अन्य रोग जैसे तिबरसा इत्यादि एवं बाह्यकारक जैसे मौसम, संधिपाद प्राणी की उपलब्धता इत्यादि पर निर्भर करती है। ऊँटों में चेचक मुख्यतः 5–8 महीने के टोरडियों (माँ से मिली प्रतिरोधक क्षमता में कमी के बाद) से लेकर 2–3 साल तक के टोरडियों में पाया जाता है। साधारणतया चार साल तक के ऊँट व गर्भवती ऊँटनी के चेचक रोग से ग्रसित होने की सम्भावनाएं ज्यादा होती है। गर्भवती ऊँटनियों में चेचक 80 प्रतिशत तक गर्भपात के लिए जिम्मेदार हो सकता है। इस रोग का प्रादुर्भाव सामान्यतया ठण्ड के मौसम में ज्यादा देखने को मिला है। चेचक रोग से ठीक हुए ऊँटों में इस रोग की प्रतिरोधक क्षमता आजीवन बनी रहती है।

चेचक से प्रभावित ऊँट से इस रोग का संक्रमण मनुष्य में भी हो सकता है। मनुष्यों में बहुत ही साधारण स्तर के लक्षण, जिनमें कि मुंह, होंठ एवं हाथों पर व्रण/फफोले हो सकते हैं, किन्तु अभी तक मनुष्यों में इसके विषाणुओं की पुष्टि नहीं की गई।

रोग के लक्षण

ऊँटों में चेचक मुख्यतः स्थानीय अवस्था में त्वचा पर फोड़ों के रूप में अथवा विस्तृत रूप में पूरे शरीर पर विशेषकर श्वसन एवं पाचन नलियों में आन्तरिक घाव भी हो जाते हैं। इस रोग की उष्मायन अवधि 3–15 दिनों की होती हैं जिसमें शुरुआत में बुखार तथा इसके 2 से 3 दिनों के बाद त्वचा पर घावों (चित्र में प्रदर्शित) का होना शामिल है। ऊँटों में भी त्वचा के घाव अन्य किसी भी पशु–प्रजाति में चेचक रोग की तरह ही विभिन्न अवस्थाओं यथा– फफोले एवं फोड़े आदि से गुजरते हैं। रोग ग्रसित ऊँट को भूख नहीं लगती, गर्दन तथा पेट पर सूजन आ जाती है व अंततः पीड़ित ऊँट की द्वितीय संक्रमण (सेप्टीसीमिया) के कारण से मृत्यु हो सकती है। गर्भवती ऊँटनियों में इस रोग से गर्भपात भी हो जाता है। इन घावों के भरने में 4 से 6 सप्ताह तक का समय लग सकता हैं।

रोग का निदान

चेचक रोग को इसके लक्षणों के आधार पर आसानी से पहचाना जा सकता है। हालांकि मूमड़ी रोग व चेचक के लक्षण आपस में दुविधा उत्पन्न कर सकते हैं, अतः आधुनिक तरीकों द्वारा जिनमें इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी – इस विषाणु की अनोखी आकृति होने के कारण, विषाणु पृथकीकरण,पी. सी.आर., इम्यूनोहिस्टोकैमेस्ट्री तकनीक द्वारा तुरंत पहचान संभव है।

उपचार

ऊँट पालकों को चेचक रोग से ग्रसित ऊँट व उसकी मृत्यु से होने वाले आर्थिक नुकसानों से बचाने के लिए देश के विभिन्न अनुसंधान संस्थानों में इस रोग के लिए रोगनिरोधी तरीके विकसित करने पर अनुसंधान किया जा रहा है।

ऊँटों में चेचक विषाणु के लिए जो दवाइयां असरदार हैं, उनमें साईंडोफोविर (Cidofovir), सीएमएक्स001 (CMX001) व एसटी–246 (ST&246) प्रमुख हैं।

त्वचा पर हुए फोड़ों के संक्रमण की स्थिति में प्रतिजैविक (एंटीबायोटिक) दवाओं का प्रयोग करना चाहिए।

चित्रः ऊँट के मुंह, जबड़े के अन्दर व पूरे शरीर की बाह्य त्वचा पर चेचक/माता रोग की फुंसियाँ

त्वचा पर हुए फोड़ों पर विषाणुनाशक (एंटीसेप्टिक) लोशन जैसे पोटैशियम परमैंग्नेट का घोल (0.1 प्रतिशत) पानी में मिलाकर अथवा 3 प्रतिशत आयोडीन सोल्यूशन फुन्सियों पर रोज लगाते रहना चाहिए और उन (घावों) पर से मक्खियों को भगाने के लिए घावों पर स्प्रे अथवा मलहम लगाया जा सकता है।

बचाव

इस रोग से प्रभावित ऊँट को अन्य स्वस्थ ऊँटों के टोलों से अलग रखना चाहिए व रोगी ऊँट के लिए खाना–पीना तथा देखभाल करने वाले व्यक्ति अथवा कर्मचारी की आवास व्यवस्था अलग रखनी चाहिए।

- राजस्थान में विशेषकर मेलों में यह संक्रमण ग्रसित ऊँट से स्वस्थ ऊँटो में शीघ्रता से फैलता है, अतः मेलों में पशु को संक्रमण से बचाने के लिए विशेष ध्यान देना चाहिए।
- ऊँटों के बाड़े में साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए ताकि कीट व अन्य पक्षियों के दुष्प्रभाव को कम किया जा सके।
- रोग से ग्रसित दूध पीने वाले टोरडियों (ऊँट के बच्चे) को यदि दूध पीने में कठिनाई हो तो ऐसे टोरडियों को बोतल से दूध पिलाया जाना चाहिए।
- ऊँटों को कंटीले आहार–चारे से दूर रखें तथा आहार में उन्हें कंटीला चारा खाने को भी न दें।

पशुओं में थनैला बीमारी : कारण, प्रबंधन एवं उपचार

काशी नाथ
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

थनैला रोग दुधारू पशुओं की एक प्रमुख बीमारी है। यह बीमारी डेयरी उद्योग से जुड़े पशुपालकों के आर्थिक नुकसान के दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण बीमारी है। अकेले इस बीमारी से पूरे भारत में प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये का नुकसान होता है, साथ ही इससे पशुपालकों को भारी आर्थिक क्षति होती हैं। पशुओं में यह रोग दो कारणों से होता हैं। पहला थन पर चोट लगने या कट जाने से और दूसरा संक्रामक जीवाणुओं का थन में प्रवेश कर जाने से। पशु को गंदे स्थान पर बांधने तथा दुहने वाले की असावधानी के कारण इस बीमारी के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। अनियमित रूप से दूध दूहना भी पशुओं में थनैला रोग को बढावा देता है। सामान्यतः यह बीमारी अधिक दूध देने वालें पशुओं में ज्यादा होती है, परन्तु ऊँटनी एवं बकरी समेत लगभग सभी वैसे पशुओं में भी होती है जो अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। थनैला बीमारी पशुओं में जीवाणु, विषाणु एवं फफूँद के संक्रमण से होता है।

लक्षण

थनैला रोग से प्रभावित पशुओं के थन में सूजन आ जाती है तथा उसमें दर्द रहता है। लक्षण प्रकट होते ही ग्रसित थन से खराब दूध आता है। दूध में छटका, खून एवं कभी कभी मवाद भी आने लगती है। अलाक्षणिक या उपलाक्षणिक प्रकार के थनैला रोग में थन बिल्कुल सामान्य प्रतीत होता है व दूध भी देखने में ठीक लगता है। प्रयोगशाला में दूध की कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस सोल्यूशन के माध्यम से जांच द्वारा रोग का निदान किया जा सकता है। लाक्षणिक रोग में जहाँ कुछ पशुओं में केवल दूध में छटका, छिछड़े, मवाद या खून आदि आता है तथा थन लगभग सामान्य प्रतीत होता है वहीं कुछ पशुओं में थन में सूजन या कड़ापन के साथ–साथ दूध भी खराब आता है। रोग का उपचार समय पर न कराने से थन की सूजन अपरिवर्तनीय हो जाती है और थन बहुत ही सख्त हो जाता है। इस अवस्था के बाद थन से दूध आना बंद हो जाता है। प्रारम्भ में एक या दो ही थन प्रभावित होते हैं लेकिन उपचार नहीं कराने पर यह सभी थनों में फैल जाता है।

रोग से बचाव/रोकथाम

1. दुधारू पशुओं के रहने/बैठने के स्थान व दूध दुहने के स्थान की नियमित सफाई करनी चाहिए। इन जगहों पर फिनाईल के घोल तथा अमोनिया कम्पाउन्ड का छिड़काव करना चाहिए।
2. दूध दुहने के पश्चात् थन की सफाई एंटीसेप्टिक घोल जैसे लाल पोटाश या सेवलोन के घोल से करना चाहिए।
3. दूध दुहने की तकनीक सही होनी चाहिए जिससे थन को किसी प्रकार की चोट न पहुंचे, साथ ही दूध निकालने वाले के नाखून व उसके हाथों की स्वच्छता पर भी ध्यान रखना चाहिए।
4. थन या अयन में किसी प्रकार के मामूली खरोंच या चोट का भी समुचित उपचार तुरंत करना चाहिए।
5. दूध की दुहाई निश्चित अंतराल पर की जानी चाहिए तथा समय–समय पर दूध की जाँच प्रयोगशाला में करवाते रहना चाहिए।
6. हाल ही में खरीदे हुए नए पशुओं को अन्य पशुओं से कुछ दिन तक अलग बांधना चाहिए।
7. रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा ऐसे पशुओं को सबसे अंत में दुहना चाहिए।
8. थनैला के रोकथाम में अच्छी गुणवत्ता वाले संतुलित आहार का योगदान महत्वपूर्ण है। अतः आहार में मिनरल मिक्स्चर (खनिज मिश्रण) की सही मात्रा की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए।
9. शुष्क पशु उपचार भी ब्याने के बाद थनैला रोग होने

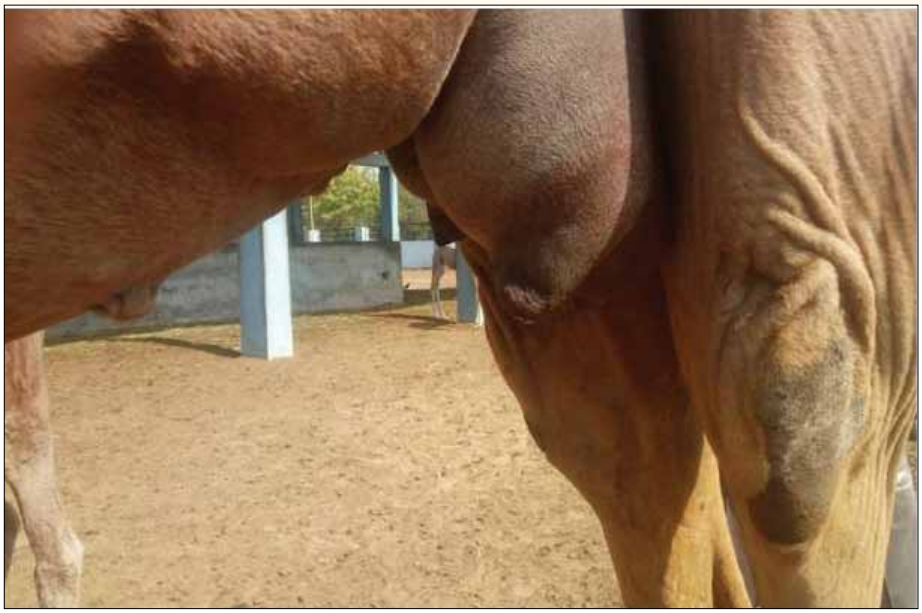

थनैला रोग से ग्रसित ऊँटनी

की संभावना काफी कम कर देता है। अतः इसके लिए पशु चिकित्सक से संपर्क कर शुष्क पशु उपचार करना चाहिए।

10. इसके अलावा पशुओं का उचित रख रखाव, थन की देख रेख तथा थनैला के लक्षण दिखने पर तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह या उपचार करवाना चाहिए।

अलाक्षणिक या उपलाक्षणिक प्रकार के थनैला रोग की समय रहते पहचान के लिए निम्नलिखित प्रकार से उपाय किए जा सकते हैं:

अ. समय समय पर दूध के पी.एच. की जांच या संदेह की स्थिति में कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस टेस्ट द्वारा दूध की जाँच।

ब. संदेह की स्थिति में दूध कल्चर एवं सुग्राहिता (सेन्सीटिविटी) जांच।

दूध निकालने के बाद थन का छेद कुछ देर तक खुला रहता है। खुले छेद के द्वारा जीवाणु आसानी से अन्दर प्रवेश कर थनैला का कारण बन सकते हैं। अतः दूध निकालने के बाद चारों थनों को दवा युक्त पानी में डुबोना चाहिए। इसके लिए एक गिलास में लाल दवा मिश्रित पानी का प्रयोग करना चाहिए तथा पशु को आधे से एक घंटो तक बैठने नहीं देना चाहिए।

उपचार

थनैला के लक्षण दिखते ही तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह से उपचार शुरू कर देना चाहिए क्योंकि रोग का सफल उपचार प्रारम्भिक अवस्था में ही संभव है अन्यथा रोग के बढ़ जाने पर थन बचा पाना कठिन हो जाता है। उपचार पूर्णरूपेण किया जाना चाहिए। इसे बीच में छोड़ना नहीं चाहिए। ग्रसित पशु के दूध की जाँच समय पर करवा कर पशु चिकित्सक की सलाह से जीवाणुनाशक दवा एवं मलहम द्वारा उपचार करवाना चाहिए। प्रायः यह औषधियां थन में ट्यूब चढ़ाकर तथा साथ ही मांसपेशी में इंजेक्शन द्वारा दी जाती है।

अलाक्षणिक या उपलाक्षणिक प्रकार के थनैला में कोई भी लक्षण बाहर से नजर नहीं आते। जिस थन में यह बीमारी होती है, उसमें से कम दूध निकलता है और दूध में वसा (फैट) की मात्रा कम रहती है। इस प्रकार से थनैला का, पशु चिकित्सक की मदद से पहचान कर तुरन्त इलाज करना चाहिए। इसे पहचानने के लिए कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस जांच परीक्षण एक सरल एवं सस्ता उपाय है।

ऊँटों में पाईका रोग

एफ.सी. टूटेजा[1], एस.डी.नारनवरे[1], आर.के.सावल[2], राकेश पूनियाँ[3] एवं राधाकृष्ण[4]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]निदेशक, [3]वरिष्ठ तकनीकी सहायक, [4]तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

ऊँटों में पाईका रोग यानि विकृत भूख, पोषण की एक असामान्य और अजीब स्थिति है, जिसमें ऊँट प्राकृतिक भोजन को छोड़कर लगातार ऐसी वस्तुए खाते हैं, जिसका कोई पोषण मूल्य नहीं होता, जैसे कि मिट्टी, पत्थर, ईंट, हड्डियां, प्लास्टिक इत्यादि। प्रभावित पशु हर उस वस्तु को चाटना शुरू कर देते हैं जिसके वे संपर्क में आते हैं। यह रोग गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि में भी हो सकता है।

ऊँटों द्वारा खाई गई (आर–पार) दीवार

मिट्टी खाता ऊँट

हड्डी चबाते ऊँट

ईंट चबाता ऊँट

प्लास्टिक खाता ऊँट का बच्चा (टोरडिया)

लकड़ी खाता ऊँट का बच्चा (टोरडिया)

कारण

पाईका कई कारणों से होता है। पाईका के कारणों को अभी पूर्ण रूप से समझा नहीं जा सका है। कुछ ज्ञात कारण इस प्रकार है :

1. यह रोग पशु के पेट में कीड़े (आंत कृमि) के कारण होता है। यह कृमि पशु का खून चूसते रहते हैं जिससे, पशु में खून की कमी के साथ–साथ खनिज लवणों की भी कमी हो जाती है। ग्रसित पशु इस कमी को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को चाटना/चबाना/खाना शुरू कर देते हैं, जो कि बाद में पशु की आदत बन जाती है।
2. यह अपच और आहार जनित त्रुटियों के कारण से भी होता है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार पाईका रोग, आहार में कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटैशियम, ऊर्जा और प्रोटीन की कमी से भी हो सकता है। यह भी तथ्य सामने आया कि भेड़ों में गंजापन और ऊन खाने की आदत भोजन में सूक्ष्म तत्व विशेष रूप से तांबा, जस्ता और कोबाल्ट की कमी के कारण हो सकता है।
3. इस बात पर भी जोर दिया गया है कि पाईका शायद नर्वस (तंत्रिका तंत्र) गड़बड़ी के कारण पोषण के साथ हस्तक्षेप करने से होता है।
4. यह पशुओं में उदासी का एक प्रतिबिम्ब भी हो सकता है, क्योंकि अकेले रखे गए पशुओ में यह प्रवृति समूह में रखे गए पशुओं की तुलना में अधिक होती है।
5. दुधारू भैंसों में, पाईका लक्षणहीन किटोसिस का एक संकेत भी हो सकता है।
6. छिटपुट मामलों में यह शीशा विषाक्तता, रेबीज और कुछ चयापचय रोगों की वजह से मस्तिष्क संबंधी विकार के कारण होता है।
7. शहरी मवेशियों में कम चारे के साथ, यह ज्यादातर खनिज लवणों की कमी के कारण होता है। कुपोषित पशु, शहरी कचरा जिसमें काफी प्लास्टिक की वस्तुएं होती है, को चबा जाते है। ऐसे पशुओं में पेट बंद की समस्या हो जाती है एवं पशु की मृत्यु भी हो जाती है।
9. सूखे अथवा अकाल की स्थिति में ऊँटों के लिए जब पर्याप्त मात्रा में चरने के लिए नहीं होता तो इन्हें जंगल में विचरने के लिए खुला छोड़ दिया जाता है ताकि मरूस्थल में जो भी वनस्पति हो, उसका सेवन कर यह पशु अपना निर्वाह कर सके। लेकिन पर्याप्त वनस्पति न होने के कारण पशु कई तरह की अखाद्य वस्तुएं जैसे कि हड्डी, पत्थर, कंकड़, कपड़ा, पोलिथिन इत्यादि वस्तुओं को खाने लगते हैं। कई बार ऐसी हड्डियों में कुछ विषैले जीवाणु जैसे कि बोटुलिज्म वगैरह पनपते रहते हैं जो कि पशुओं में बीमारी व मौत का कारण बनते हैं।

अकाल में विचरते ऊँट

लक्षण

जब पशु को पहली बार देखा जाता है तो लगता है, कि इसके पोषण की स्थिति अच्छी है, लेकिन शीघ्र ही उसकी शारीरिक स्थिति गिरनी शुरू हो जाती है। ग्रसित पशु कुछ हद तक बेचैन, असहज और उदास हो जाता है। रोगी पशु किसी भी समय असामान्य अखाद्य पदार्थों को खाना शुरू कर देता है। इसमें वह अपने खूंटों, पेड़ों की छाल, रस्सी आदि को दांतों से काटता व् चाटता है। इसके अतरिक्त मिट्टी, ईंट, पत्थर, बजरी, पेन्ट, गोबर, चूना, हड्डी आदि को भी खाता एवं चबाता है। इसके कारण पशु धीरे–धीरे दुबला–पतला एवं कमजोर होने लगता है। कमजोरी की स्थिति में ऊँट का कूबड़ धीरे–धीरे कम होकर समाप्त हो जाता है। पशु में कभी–कभी अनियमित जुगाली, पेट में गैस आदि से अपच के लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं। कभी–कभी पशु में दस्त एवं कब्ज आदि भी हो जाती है। कैल्शियम की कमी से दुधारू पशुओं में उनके ब्याने के बाद दुग्ध ज्वर, स्नायु कमजोरी से कंपकंपी होना आदि समस्याएं उत्पन्न होती है। सोडियम (नमक) की कमी से पशुओं की त्वचा सूखी व चमकहीन हो जाती है। लोहा व तांबा, रक्त में हिमोग्लोबिन निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी कमी से रक्ताल्पता हो जाती है। बाद में पशु में एनीमिया (पीली श्लेष्मा झिल्लियाँ) होने के साथ–साथ त्वचा खुरदरी एवं कठोर हो जाती है। अगर पशु के इलाज में देरी होती है तो एक निश्चित अवधि के बाद, कुपोषण और थकावट से भी पशु की मृत्यु हो सकती है।

प्रभाव

खनिज लवणों की कमी इसका एक मुख्य कारण होता है।

- प्रभावित पशुओं की भूख विकृति के साथ साथ उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है। दुधारू पशुओं के उत्पादन क्षमता में स्पष्ट रूप से कमी आंकी जा सकती है।
- युवा पशुओं में शारीरिक वृद्धि और विकास कम हो जाता है।
- स्वस्थ पशु दुर्बल व क्षीण हो जाते हैं एवं प्रजनन क्षमता में कमी आ जाती है।
- विकृत भूख के पश्चात पशु अस्थिमृदुता की स्थिति में आता है, तब उसकी हड्डियाँ भंगुर और आसानी से खंडित होने वाली हो जाती हैं।
- अखाद्य पदार्थो के माध्यम से पशु में आंत कृमि का प्रकोप हो जाता है।
- पशुओं द्वारा चबाए जाने वाली हड्डियाँ क्लॉस्ट्रीडियम बोटुलिज्म जीवाणुओं से प्रभावित हो सकती है, जिसको सेवन करने से पशु की तुरंत मृत्यु हो जाती है।
- कुछ ऊँटो में अखाद्य पदार्थ ग्रासनलिका बंद जैसी समस्या भी उत्पन्न करते हैं जिसमें तुरंत प्रभाव से पशु का खाना पीना बंद हो जाता है।

निदान एवं उपचार

(1) अगर पशु में आंत–कृमि हो गए हैं तो पशु की गोबर जाँच से इसका पता लगा कर कृमि नाशक दवा से उपचार करना चाहिए, इसके बाद खनिज लवणों की हुई कमी को पूरा करने के लिए पशु को रोजाना आहार में खनिज लवण (मिनरल मिक्सचर) खिलाना चाहिए।

(2) खून की जाँच कर यह पता लगाया जा सकता है कि किस विशेष लवण की कमी हो गई है, उस लवण को विशेष रूप से खिलाया जा सकता है।

(3) भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चला कि पाईका ग्रसित ऊँटों में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की कमी हो जाती है। इन ऊँटो को इलाज के लिए खनिज मिश्रण, 50 ग्राम प्रति दिन प्रति ऊँट खिलाना उचित पाया गया जिससे यह ऊँट स्वस्थ्य हो गए।

(4) जहाँ तक हो सके, पशुओ को बाड़े में अकेला न रखें।

(5) दुधारू भैंसों में रोग होने पर किटोसिस की भी जाँच अवश्य करवा कर उपचार करें।

(6) भेड़ों में यह रोग होने पर चारे एवं खून में सूक्ष्म लवणों की मात्रा जाँच कर उपचार किया जा सकता है।

(7) चारागाह में चरने वाले पशुओं के लिए चारागाह बदलना फायदेमंद हो सकता है जिससे भिन्न–भिन्न वनस्पतियों के सेवन से कुछ लवणों की कमी पूरी हो सकती हैं।

(8) पाईका के कारण हुए रोगों जैसे कि अंतः कृमि का प्रकोप, बोटुलिज्म, ग्रासनलीका बंद इत्यादि का तुरंत इलाज करवाना चाहिए।

निपाह वायरस बीमारी : पशुओं से मनुष्यों में होने वाली महामारी

सुरेन्द्र[1], अभिषेक गौरव[2] एवं रिधिमा महादेवा[1]
[1]स्नातकोत्तर शोधार्थी, [2]सहायक आचार्य
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, नवानियां, वल्लभनगर (उदयपुर)

(1) **परिचय** : – निपाह वायरस एक जूनोटिक वायरस है जो मनुष्यों में संक्रमित भोजन अथवा जानवरों (चमगादड़ एवं सूअर) के खाये हुए फल या सब्जी खाने से भी फैलता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य भी रोग के फैलाव में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। इस रोग से ग्रसित मनुष्य में नैदानिक प्रस्तुति की सीमा तीव्र श्वसन संक्रमण से घातक इन्सेफेलाइटिस तक होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार इस रोग में घातक दर 40 प्रतिशत से 75 प्रतिशत हैं जो कि इस रोग के प्रकोप, महामारी विज्ञान निगरानी और नैदानिक प्रबंधन पर निर्भर करती है।

(2) **रोगकारक**: – निपाह वायरस एक आर. एन. ए. वायरस है जो पैरामिक्सोवाइरिडी फैमिली के हेनिपवायरस जीनस का सदस्य है।

(3) **इतिहास** : – सर्वप्रथम यह वायरस 1999 में मलेशिया के नेगेरी सेम्बिलन के कन्पुंग संगाई निपाह गांव के मनुष्य में देखा गया था। जिसके फलस्वरुप इस संक्रमण का नाम निपाह वायरस रखा गया। इसके बाद यह रोग 2001 में बांग्लादेश में देखा गया। मनुष्य में होने वाला निपाह वायरस संक्रमण मुख्यतः दो आनुवंशिक प्रजातियों द्वारा होता है जो कि निपाह वायरस मलेशिया एवं निपाह वायरस बांग्लादेश हैं। भारत में यह रोग सबसे पहले 2001 में पश्चिम बंगाल में खोजा गया।

(4) **वर्तमान स्थिति** :– अभी हाल ही में केरल के (इरनाकुलम जिले से) एक 23 साल के युवक को निपाह वायरस पॉजिटिव पाया गया। जिसकी पुष्टि पुणे के राष्ट्रीय विषाणु विज्ञान संस्थान ने किया। वर्ष 2018 में केरल में निपाह वायरस के कारण 17 लोगों की जान गई। फिलहाल केरल सरकार द्वारा निपाह वायरस के मामले पर निगरानी रखने के लिए एक निगरानी दल का गठन किया गया है।

(5) **आकारिकी** : – यह विषाणु बहुरुपी, गोलाकार अथवा धागेनुमा, 40 से 1900 नैनोमीटर आकार का होता है। यह अपनी सतह पर एक परतीय औसत 17±1 नैनोमीटर आकार के प्रक्षेपण रखता है।

(6) **हस्तांतरण** : – प्राकृतिक रुप से यह वायरस मुख्यतः टेरोपस नामक जीनस् के चमगादड़ के संक्रमण द्वारा फैलता है तथा बाद में महामारी का रुप ले लेता है। मनुष्य में यह रोग रोगग्रसित चमगादड़, सूअर अथवा मनुष्य के प्रत्यक्ष रुप से संपर्क में आने से फैलता है एवं ताड़ के कच्चे रस के सेवन से भी निपाह वायरस फैलता है।

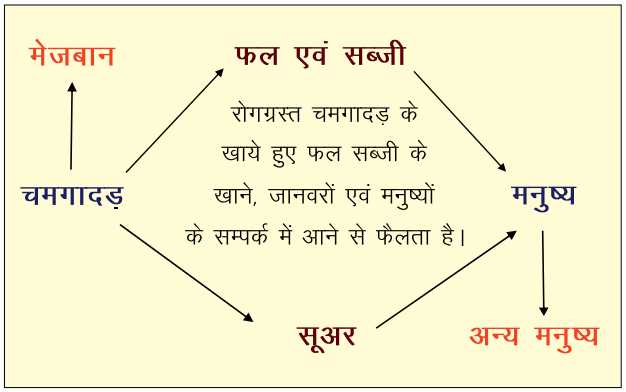

(7) **पशुओं में निपाह वायरस के लक्षण**: – यह रोग मुख्यतः सुअर एवं अन्य पालतू पशुओं जैसे घोड़ा, भेड़, बकरी, बिल्ली एवं कुत्ते में फैलता है। सूअर में यह बहुत ज्यादा संक्रामक होता है। इस रोग की उष्मायन अवधि 4 दिन से 14 दिन होती है। इस रोग से ग्रसित पशु में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं:–

- तेज बुखार

- सांस लेने में कठिनाई
- कठोर खांसी
- स्नायविक लक्षण जैसेः– सिहरन, मांसपेशियों में ऐंठन, लंगड़ापन आदि होता है।

(8) **मनुष्यों में निपाह वायरस के लक्षणः** – मनुष्य में इस रोग का उष्मायन काल 4 दिन से 2 महीने तक होता है। मुख्यतः 4 से 14 दिन तक होता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं–

- बुखार
- सिरदर्द, मस्तिष्क में सूज़न
- मांसपेशियों में अकड़न एवं खिंचाव
- उल्टी आना, चक्कर आना
- गले में खराश एवं दर्द
- अति तीव्र श्वसन परिलक्षण
- न्यूमोनिया
- दिमागी बुखार एवं घातक इन्सेफेलाइटिस
- निपाह वायरस से संक्रमित व्यक्ति 24–48 घंटे के अन्दर लक्षण बढ़ने पर कोमा में भी चला जाता है तथा उसकी मृत्यु हो जाती है, क्योंकि अभी तक इसका सटीक इलाज खोजा नहीं गया है।

(9) **निदान एवं पुष्टिकरण जांचः** – सर्वप्रथम मरीज में इस रोग के नैदानिक इतिहास के आधार पर पुष्टि की जाती है जो कि इस रोग के तीव्र होने एवं ठीक होने की स्थिति के मध्य होते है। इसके पश्चात् मरीज के रोग की शुरुआती काल में नाक एवं गला स्वेब, मस्तिष्क मेरुद्रव, रक्त, मूत्र आदि के नमूने लेकर विषाणु को आर.टी.–पी.सी.आर. तकनीकी द्वारा पृथक किया जाता है। रोग के अन्तिम पड़ाव में एन्टीबॉडी जांच एलाईसा तकनीकी द्वारा की जाती है।

(10) **इलाजः** – वर्तमान में इस बीमारी का कोई इलाज एवं टीका नहीं खोजा जा सका है। श्वसन, मस्तिष्क एवं तंत्रिका संबंधी जटिलताओं को ठीक करने के लिए मरीज की गहन स्वास्थ्य देखभाल की सिफारिश की जाती है। साथ ही विषाणु जनित रोगों की रोकथाम हेतु रिबाविरिन नामक औषधि का उपयोग किया जाता है।

(11) **नियंत्रण एवं रोकथाम**

- इस रोग को नियंत्रित करने के लिए स्थानिक क्षेत्र में रोग ग्रस्त सूअर एवं चमगादड़ से बचना चाहिए तथा कच्चे ताड़ के रस का सेवन नहीं करना चाहिए।
- अतिरिक्त प्रयासों में हम, रोग के महामारी फैलाव के प्रति जागरुकता एवं निगरानी द्वारा ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।
- अनुसंधान द्वारा हम चमगादड़ एवं निपाह वायरस की पारिस्थितिकी बीमारी के मौसम संबंधी जांच कर बेहतर तरीके से समझ सकते हैं।

उपरोक्त प्रयासों द्वारा संक्रमण नियंत्रण अभ्यास कर मनुष्य से मनुष्य में फैलने वाले इस रोग से बचा जा सकता है एवं विश्वसनीय प्रयोगशाला जांच द्वारा और सुदृढ़ किया जा सकता है।

पारंपरिक या एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति में राजस्थान में पाये जाने वाली वनस्पतियों का महत्व

अमिता रंजन[1], सुविधि[2], जीशान नवी[3] एवं राकेश रंजन[4]
[1]सहायक आचार्य, [2,3]स्नातकोत्तर विद्यार्थी, [4]प्रधान वैज्ञानिक
[1–3]पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, राजुवास, बीकानेर
[4]भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

भारतवर्ष में विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों जैसे आयुर्वेद, होम्योपैथी, नेचुरोपैथी, यूनानी, सिद्ध एवं एलोपैथी में पारम्परिक या एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे तो "एंटीबायोटिक" (प्रतिजैविक–दवा) के स्वर्णिम युग (1935–2010) के समय इन पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों पर विश्वास कमत्तर होता गया, पर पिछले कुछेक दशकों में पुनः इसका प्रचलन बहुतायत में होने लगा है। विशेषकर चीन, जापान, पाकिस्तान, श्रीलंका, भारत व थाईलैण्ड जैसे देशों में जैव–विविधताओं की भरमार है व औषधीय पौधों का अथाह भंडार इन देशों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण में ज्ञात हुआ है कि अभी पूरे विश्व की आधी से अधिक आबादी रोजमर्रा की छोटी–छोटी बीमारियों के उपचार एवं स्वयं के स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु औषधीय वनस्पतियों एवं अन्य पारंपरिक दवाओं का इस्तेमाल करती हैं।

आज पूरा विश्व एक ओर "नैनो–टेक्नोलोजी" एवं "जीन–थैरेपी" जैसे सुपर स्पेशियलाइज्ड (अतिविशिष्ट) ज्ञान द्वारा विभिन्न बीमारियों को जड़ से (समूल) मिटाने हेतु नित नये आयाम स्थापित कर रहा है, वहीं दूसरी ओर प्रतिजैविक दवाओं का प्रभाव अब दुष्प्रभावों में बदल रहा है। हालांकि ऐसा स्वयं द्वारा प्रतिजैविकों के उपयोग को समुचित मात्रा एवं सही समय पर सुनिश्चित न करना एक प्रमुख कारण जान पड़ता है। इस पर चिंतन–मनन आज की जरूरत है। इन सब से परे पारम्परिक या एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति आज एवं आने वाले भविष्य के वर्षों में 10 प्रतिशत वार्षिक बढ़ोतरी की दर से अग्रसर होगा। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विगत के वर्षों में यह अशोधित निष्कर्ष के तौर पर प्रचलित था पर अब यह नई दवाओं के खोज का महत्वपूर्ण आधार है।

राजस्थान प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में पारंपरिक चिकित्सा पद्धति (एथनोवेटेरिनरी) की उपयोगिता

भारत विविध जलवायु–क्षेत्रों एवं विभिन्न वानस्पतिक प्रजातियों से सम्पन्न देश है। पूरे देश में लगभग 17,000 वनस्पतियों की प्रजातियाँ पाई जाती है। वैश्विक परिदृश्य में लगभग 2,50,000 तरह की प्रजातियाँ उपलब्ध है। परन्तु इसका मात्र 10 प्रतिशत ही विभिन्न चिकित्सा/उपचार प्रणालियों में उपयोग किया जाता है। विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों में लगभग 45–50 प्रतिशत, उष्ण जलवायु प्रदेशों में पाई जाती है। एक रोचक तथ्य यह भी है कि अभी तक सिर्फ 1 प्रतिशत उष्ण कटिबन्धीय जलवायु प्रदेशों में पाई जाने वाली औषधीय पौधों का अध्ययन किया गया है एवं आगामी वर्षों में इनमें विभिन्न रासायनिक पदार्थों की खोज की अपार संभावनाएँ हैं।

भारत के उत्तर–पश्चिम में बसा राजस्थान जलवायु के संदर्भ में शुष्क या अर्द्ध–शुष्क प्रदेशों में आता है। यहाँ 8–9 महीने जलवायु अपेक्षाकृत अन्य प्रदेशों से गर्म तापमान एवं कम वर्षा वाला होता है। तथ्यात्मक बात यह भी है कि राजस्थान में सर्दियों में तापमान भी काफी कमत्तर चला जाता है। एक ही प्रदेश में यह अन्तर इतना अधिक है कि मरूस्थलीय प्रदेश "राजस्थान" में छोटी पत्तियों वाली कंटीली वनस्पतियाँ बहुतायत में पाई जाती हैं, जिन्हें 'मरूदभिद्' कहते हैं। इन प्रदेशों में मुख्यतया आक, बबूल, खींप, खेजड़ी, केर आदि वृक्षों की बहुलता एवं घास वाले प्रकारों में सेवण प्रमुख प्रजाति है।

राजस्थान प्रदेश में विभिन्न कारणों से एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति प्रचलित है, इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं–

1. राजस्थान प्रदेश में दूर दराज ग्रामीण इलाकों के लोग अपने लोकज्ञान एवं इसके महत्व को सैंकड़ों वर्षों के अथक परिश्रम द्वारा अर्जित अनुभव के माध्यम से अपने पशुओं का इलाज करने में अकूत विश्वास रखते हैं।
2. इस प्रदेश में विशिष्ट औषधीय पौधों की बहुलता है। इसका प्रभाव प्राचीन दशकों से स्पष्ट है एवं लागत भी कम है। कम लागत एवं अच्छे प्रभाव इसकी रोचकता को कायम रखते हैं एवं पशुपालकों व अन्य वर्गों के लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।
3. आमजनों के प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल एवं पशुओं का प्राथमिक उपचार व उचित रख–रखाव, इस प्रदेश में बड़े पैमाने पर प्रभावी तौर पर स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है एवं उन्हें विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित भी किया जाता है।
4. एथनोवेटेरिनरी चिकित्सा पद्धति के दुष्प्रभाव कमत्तर हैं एवं अन्य प्रतिजैविकों व दवाओं की तुलना में बेहतर विकल्प सिद्ध हो रहा है।
5. राजस्थान के अलवर जिले में ग्रामीण समुदाय अपने आस–पास प्राप्त होने वाले औषधीय पौधों की रक्षा करते हैं एवं जंगलों की पूजा करते हैं, उन्हें ओरन या देववानी समुदाय कहते हैं। इन्हें अपने पारम्परिक ज्ञान पर अटूट विश्वास है जो दूसरे समुदायों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन सकता है। इन पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर विशेष अध्ययन की आवश्यकता है।

राजस्थान में औषधीय पौधे एवं उनका चिकित्सकीय उपयोग

क्र.सं.	स्थानीय / वानस्पतिक नाम	उपयोगी भाग	बीमारी	पारम्परिक उपयोगिता / उपचार
1.	बबूल (एकेसिया निलोटिका)	तने की छाल	कब्ज	तने की छाल का सत्त निकालकर 250 मिली. दिन में दो बार दो दिनों तक देकर पशुओं के कब्ज को उपचारित किया जाता है।
2.	बीलपत्र (एगल मार्मेलॉस)	फल का गूदा	दस्त	200 ग्राम फल का गुदा खिलाकर पशुओं का उपचार किया जाता है।
3.	नीम (एजेडिरेक्टा इंडिका)	तने की छाल	दस्त	100 मिली. तने की छाल का काढा 3 दिन तक दिन में एक बार देकर दस्त का उपचार किया जाता है।
4.	सरसों (ब्रेसिका जुनसिया)	सरसों का तेल	त्वचा रोग	सरसों के तेल को 1 प्रतिशत नमक के साथ मिश्रण बनाकर त्वचा पर लगाकर त्वचा संबंधी रोगों का उपचार किया जाता है।
5.	केर (कैपेरिस डिकिडुआ)	फल	कब्ज	50 ग्राम फलों का सूखा पाउडर बनाकर 2–3 दिन तक दिन में 2 बार देकर कब्ज का इलाज किया जाता है।
6.	जाल (कैपेरिस सेपियारिया)	तने की छाल	बुखार	तने की छाल का 100 मिली. रस निकालकर 2–3 दिन तक देकर बुखार का इलाज किया जाता है।
7.	धतुरा (धतुरा स्ट्रेमोनियम)	फल	बाँझपन	ज्वार के आटे की रोटी में छिले हुए दो धतुरे के फलों को लपेटकर पशुओं को देकर हीट (गर्मी) में लाया जा सकता है।
8.	अजवायन (ट्रेकिस्पर्मम अम्मी)	बीज	आफरा	अजवायन के बीज, अदरक की गाँठ और काली मिर्च के मिश्रण को पीसकर पानी के साथ घोल बनाकर दिया जाता है।
9.	आम (मैंगनिफेरा इंडिका)	पत्तियाँ	खुरपका–मुँहपका	आम की पत्तियों का रस खुरपका–मुंहपका रोग में खिलाया जाता है।
10.	बरगद (फिकस बेंगालेंसिस)	तने की छाल	आफरा	100 ग्राम तने की छाल को पीसकर इसमें 10 ग्राम अजवायन एवं 2 प्याज मिलाकर मिश्रण बनाते हैं, जिसका 50 ग्राम 2 दिनों तक देकर आफरे का उपचार किया जाता है।

क्र.सं.	स्थानीय / वानस्पतिक नाम	उपयोगी भाग	बीमारी	पारम्परिक उपयोगिता / उपचार
11.	खींप (लेप्टेडेनिया पायरोटेक्निका)	जड़	पेट दर्द (फूड पॉयजनिंग)	फूड पॉयजनिंग के उपचार के लिए खींप की जड़ों का रस निकालकर 100 मिली. दिन में 2 बार 2 दिनों तक दिया जाता है।
12.	अलसी (लाइनम यूसीटैटीसिमम)	सम्पूर्ण पौधा	बाह्य परजीवी	100 ग्राम अलसी के पाउडर को 100 मिली. पानी में मिलाकर पेस्ट बनाकर, लेपन द्वारा चिंचड़ों का उपचार किया जाता है।
13.	खेजड़ी (प्रोसोपिस सेनेरेरिया)	पत्तियाँ	छाले–अल्सर	पत्तियों के पेस्ट का उपयोग पशुओं के मुँह के छालों के उपचार के लिए किया जाता है।
14.	ग्वारपाठा (एलॉय बारबेडेनसिस)	तना	घाव	ग्वारपाठे का उपयोग त्वचा के घाव के उपचार में किया जाता है। यह एंटीसेप्टिक की तरह काम करता है।
15.	मैथी (ट्राइगोनेला फेनम)	पत्तियाँ	संक्रामक दस्त	संक्रामक दस्त के इलाज के लिए अधिकतम 1 किग्रा. तक मैथी की पत्तियाँ खिलाकर रोग उपचारित किया जाता है।
16.	अरण्डी (रिसिनस कम्यूनिस)	बीज	आफरा	250 ग्राम बीज को पीसकर 2 लीटर गाय के दूध में उबालकर, 2 दिनों तक देकर आफरे का उपचार किया जाता है।
17.	आक (कैलोट्रोपिस प्रोकेरा)	पत्तियाँ	जोड़ दर्द (अर्थराइटिस)	आक की पत्तियाँ एवं लहसुन की कलियों को सरसों के तेल में भूनकर, जोड़ों के दर्द पर मलकर दर्द का उपचार किया जाता है।

निष्कर्षतः ऊपरी तालिका से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न बीमारियों यथा–आफरा, दस्त, कब्ज, त्वचा रोग, बाह्य परजीवी संक्रमण, जोड़ों में दर्द की अवस्था, अल्सर की समस्या, बुखार इत्यादि के उपचार में औषधीय पौधों व वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह कम कीमत में प्राथमिक लाभ पहुँचाता है, कभी–कभी इन औषधीय पौधों के विभिन्न उत्पादों को बनाने में काली मिर्च, लाल मिर्च, गुड़, शहद इत्यादि का प्रयोग किया जाता है, जो हरेक घर में सरलता से उपलब्ध है। एक बात जो आने वाले वर्षों में चिंतनीय है, वह है इसका वैज्ञानिक मूल्यांकन, इनसे बनी दवाओं का मानकीकरण, इसके क्रियाशील अणुओं (सक्रिय अवयवों) की वास्तविक पहचान, खुराक का निर्धारण, दुष्प्रभावों की यथासंभव जाँच एवं विशिष्ट व योजनाबद्ध / चरणबद्ध विकास के रास्ते इन्हें विकसित करना। वैज्ञानिकों, शिक्षाविद्‌ों को इन बिन्दुओं पर सही दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

भाकृअनुप-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र के मुख्य विस्तार कार्य

राजेश कुमार सावल[1] एवं नेमीचंद बारासा[2]
[1]निदेशक, [2]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर

उष्ट्र प्रजाति की घटती उपयोगिता के कारण दिन प्रतिदिन इनकी संख्या में कमी आ रही है जिसके कारण इस संस्थान ने प्रसार–प्रचार कार्यों को और अधिक गतिशीलता प्रदान की है। इस केन्द्र द्वारा योजनाबद्ध तरीकों से कार्यक्रमों एवं गतिविधियों का आयोजन किया जाता है ताकि न केवल ऊँट पालकों, किसानों बल्कि आमजन के समक्ष भी उष्ट्र प्रजाति के महत्व एवं उपयोगिता को उजागर किया जा सके। यह पशु अनेकानेक विशेषताओं को संजोए हैं तथा केन्द्र यह मंशा रखता है कि मानव समाज द्वारा इसका भरपूर लाभ लिया जाना चाहिए।

विद्यार्थियों को उष्ट्र प्रजाति संबद्ध जानकारी का संप्रेषण

इस केन्द्र द्वारा उष्ट्र प्रजाति के विकास एवं संरक्षण को संबल प्रदान करने हेतु हर संभव व्यावहारिक प्रयास किए जा रहे हैं। स्कूली बच्चों को रेगिस्तानी पारिस्थितिकी एवं उष्ट्र प्रजाति में विद्यमान अनूठी अनुकूलन विशेषताओं के बारे में केन्द्र के स्थापना दिवस, विज्ञान दिवस आदि महत्वपूर्ण अवसरों पर विषय–विशेषज्ञ वैज्ञानिकों द्वारा वैज्ञानिक जानकारी संप्रेषित की जाती है। उन्हें शैक्षणिक जानकारी के दौरान यह बताया जाता है कि कैसे यह पशु अन्य पशुओं से भिन्न है? इस प्राणी में विद्यमान अनूठी वातावरणीय अनुकूलनताएं यथा–धरती पर बैठने की मुद्रा, शारीरिक ऊँचाई एवं आकार, तापीय अनुकूलनता, कूबड़, जल प्रबंधन एवं निर्जलीकरण, खान–पान की आदत, शक्तिशाली धावक इत्यादि जो इस प्रजाति को रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र में उपयुक्त पशु सिद्ध करने हेतु पर्याप्त मानी जा सकती हैं। इस तरह की रोचक जानकारी छात्रों में कौतूहल का भाव पैदा करती है और उन्हें इस पशु से जोड़ती है।

ऊँटनी से स्वच्छ दूध उत्पादन लेने हेतु जागरूकता प्रदान करना

बदलते परिदृश्य में ऊँट को अब दुधारू पशु के रूप में पाला जाने लगा है, ऐसे में इसकी उत्पादन क्षमता के साथ–साथ गुणवत्ता का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। गाय व भैंस में दूध उत्पादन संगठित क्षेत्र में होता है, अतः स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्त्व भी पशु पालकों को भलीभांति ज्ञात है परन्तु भारत में ऊँटनी से दूध उत्पादन प्रारम्भिक स्तर पर शुरू हुआ है। इस कारण पशुपालकों को दुग्ध उत्पादन हेतु बरती जाने वाली सावधानियों के बारे में समुचित जानकारी देना जरूरी है। ऊँटनी के दुग्ध उत्पादन संबंधी इस पहलू को केन्द्र की विस्तार गतिविधियों के माध्यम से ऊँट पालकों के संज्ञान में लाया जाता है ताकि दूध की गुणवत्ता बनी रहे एवं दुधारू पशु स्वस्थ भी रहे। इसमें मुख्यतः थनैला रोग की पहचान, दूध की जांच, बर्तनों की सफाई, दूध दुहने के पश्चात उसकी सफाई, संग्रहित करने के पश्चात गुणवत्ता जाँच, पैकेजिंग, कोल्ड चेन परिवहन, डेयरी की स्वच्छता, व्यवसायिक प्रबंधन हेतु आवश्यक संसाधन इत्यादि हैं। केन्द्र इस बात पर जोर देता है कि दूध दुहने वालों की स्वच्छता तथा दुहने के तरीके, पशु बाड़ों की साफ–सफाई इसमें विशेष महत्व रखती हैं। साथ ही दुधारू पशुओं का पोषण एवं सही देखभाल अति आवश्यक है ताकि दुग्ध उत्पादन क्षमता बनी रहें।

उष्ट्र दूध के गुणधर्मों की आमजन को जानकारी

इस महत्वपूर्ण प्रजाति के दूध को लेकर समाज में अनेकानेक निराधार मिथक फैले हुए हैं यथा– ऊँटनी के दूध को निकालते ही उनमें कीड़े पड़ना, उसमें दुर्गन्ध आना, खारा होना आदि जबकि वास्तविकता में यह दूध औषधीय गुणों से भरपूर है। केन्द्र ने वैज्ञानिक अनुसंधानों

के माध्यम से इन मिथकों को सिरे से खारिज किया है। इसकी औषधीय विशेषताओं को देखते हुए मधुमेह, क्षय रोग, ऑटिज्म रोगों के प्रबंधन में इसकी महत्ता तथा इसे लोक स्वीकार्यता प्रदान करने तथा प्रामाणिक तौर पर कार्यात्मक खाद्य (फंक्शनल फूड) पदार्थों की श्रेणी में शामिल करवाने की दिशा में उष्ट्र दुग्ध पार्लर, उष्ट्र डेयरी आदि की स्थापना कर महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। उष्ट्र दूध के बारे में प्रामाणिक जानकारी संस्थान में प्रशिक्षण एवं भ्रमण हेतु आने वाले पशु पालकों–कृषकों, पर्यटकों, स्कूली बच्चों एवं आमजन को व्याख्यान, सूचना पट्टों, पोस्टरों आदि के माध्यम से दी जाती है ताकि अन्य पशुओं के दूध की तुलना में इस औषधीय दूध के बारे में वे जानें व उसका सेवन तथा व्यवसाय कर विभिन्न मानवीय बीमारियों के प्रबंधन के लिए इसका लाभ उठा सकें। केन्द्र के इस क्षेत्र में अनेकानेक प्रयास, आज उष्ट्र व्यवसाय को दुग्ध के क्षेत्र में एक नया आयाम दिलाने में महत्ती रुप से सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

ऊँटों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारियां और उनकी रोकथाम

उष्ट्र व्यवसाय में उनका स्वास्थ्य प्रबंधन एक जरूरी व संवेदनशील पहलू है तथा इस प्रयोजनार्थ न केवल केन्द्र अपितु फील्ड (प्रक्षेत्र) स्तर पर भी जन जातीय उपयोजना, अनुसूचित जाति योजना, आत्मा परियोजना, पशु मेलों आदि के दौरान पशु स्वास्थ्य शिविरों, कृषक वैज्ञानिक संवाद आदि के माध्यम से जमीनी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। ऊँटों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारियों और उनकी रोकथाम हेतु ऊँट पालकों को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की जाती है। संवाद कार्यक्रमों में विषय–विशेषज्ञ वैज्ञानिक, पशुपालकों को बताते हैं कि अगर पशुओं को दैनिक कार्यों के निष्पादन हेतु इस्तेमाल में लेते हैं, ऐसे में उनकी देखभाल करते समय कई बीमारियां, रोगग्रस्त पशुओं को छूने से इंसानों में भी फैल सकती है जैसे कैमल पॉक्स (माता/चेचक), खाज (मेंज/पाँव), एंथ्रेक्स, कोरोना वायरस इन्फेक्शन, ब्रुसेल्लोसिस, ट्यूबरक्लोसिस (टी बी), स्कार्लेट फीवर इत्यादि। ऐसे में पशु की सार–संभाल करते समय, सफाई का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

इस हेतु केन्द्र द्वारा उष्ट्र क्लिनिक के माध्यम से भी स्थानीय क्षेत्रों के ऊँटों के इलाज हेतु पहल की गई ताकि

पशु पालकों को इससे लाभ मिल सके। ऊँट क्लिनिक के माध्यम से उनके पशुओं की विभिन्न बीमारियों की निःशुल्क जांच तथा इलाज किया जाता है।

प्रशिक्षणार्थियों को सैद्धांतिक व व्यावहारिक प्रशिक्षण

केन्द्र नियमित रूप से उष्ट्र व्यवसाय को मजबूती प्रदान करने हेतु ऊँटनी के दूध एवं इससे निर्मित दुग्ध उत्पादों, स्वास्थ्य प्रबंधन, उद्यमिता से जुड़े इस पशु प्रजाति के नए आयामों पर प्रशिक्षण देता है। इस दौरान केन्द्र की मुख्य अनुसंधान गतिविधियां, ऊँट की मदद से होने वाले विभिन्न कार्य, इस प्रजाति की बीमारियाँ, प्रजनन के लिए इनका प्रबंधन, उष्ट्र द्वारा चलाये जाने वाले विभिन्न कृषि उपकरण, दुग्ध उत्पादन की अवधि, दूध से बने उत्पादों, आहार प्रबंधन इत्यादि को सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्वरूप में प्रदर्शित किया जाता है ताकि पशु पालकों को पशु पालन के लिए वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हों। उद्यमिता विकास हेतु विशेषकर पशु पालकों एवं अन्य उद्यमियों को ऊँटनी के दूध से विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने एवं व्यवसाय से जुड़ी उपयोगी जानकारी संबधित प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे उष्ट्र दूध से सम्बंधित व्यावसायिक सम्भावनाओं को समझते हुए अपना व्यवसाय शुरू कर सकें। इन अवसरों पर प्रशिक्षणार्थियों को व्यावहारिक तौर पर भी उष्ट्र दुग्ध पार्लर के माध्यम से ऊँटनी के दूध से विभिन्न स्वादिष्ट उत्पाद तैयार करना सिखाया जाता हैं।

पर्यटन व्यवसाय के क्षेत्र में ऊँट दौड़ का आयोजन

केन्द्र द्वारा ऊँटों पर वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ–साथ व्यावहारिक पक्ष को भी महत्व दिया जा रहा है ताकि ऊँट पालकों को इनसे सीधा लाभ मिल सके। इस हेतु केन्द्र द्वारा विशेष अवसरों पर प्रायोगिक ऊँट

दौड़ के आयोजन की शुरुआत की गई है। संस्थान द्वारा पर्यटन विभाग, राजस्थान सरकार एवं जिला प्रशासन के तत्वावधान में वृहद स्तर पर अंतरराष्ट्रीय ऊँट उत्सव के उपलक्ष्य पर केन्द्र परिसर में ऊँट दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विविध क्षेत्रों के ऊँट पालकों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया और सैंकड़ों सैलानी व आमजन इस रोमांचकारी दौड़ के साक्षी बनें। केन्द्र के इस प्रयास को खूब सराहा गया। हालांकि अरब देशों में उष्ट्र दौड़ को बहुत पसंद किया जाता है। परन्तु नगर स्तर पर आयोजित उष्ट्र दौड़ प्रतियोगिताओं में केन्द्र के अनुभूत प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में भी ऊँट बाहुल्य स्थानों पर इस दौड़ को एक खेल गतिविधि के रूप में विकसित किया जा सकता है, जिससे ऊँट पालकों को व्यवसायिक लाभ मिल सकेगा तथा आमजन/पर्यटकों में रुझान बढ़ेगा और ऊँट (नर) का भी बेहतर उपयोग हो सकेगा। उष्ट्र प्रजाति के सीमित होते उपयोग व इस दौड़ के प्रति लोगों की गहरी रुचि को देखते इसके विकास व संरक्षण में यह खेल गतिविधि 'मील का पत्थर' साबित हो सकती है।

केन्द्र द्वारा विकसित उष्ट्र संग्रहालय व पर्यटनीय सुविधाएँ

उष्ट्र संग्रहालय आगंतुकों/पर्यटकों के लिए विशेष तौर पर विकसित किया गया है। संग्रहालय में ऊँटों की मुख्य नस्लों के बारे में चारित्रिक चित्रण मिलता है। साथ ही उष्ट्र चमड़े, हड्डियों से बने उत्पाद, उस्ता कला से बने उत्पाद, ऊँटों से जुड़े कार्य जैसे भारत–पाक सीमा पर गश्त के लिए इस्तेमाल, ऊँटो को सजाने के लिए वस्तुएं, ऊँटनी के दूध से विकसित विभिन्न उत्पादों के चित्र, ऊँटों को खिलाये जाने वाले विभिन्न चारे, उष्ट्र बाल/ऊन से बने विभिन्न उत्पाद, ऊँटों से जुड़े सांस्कृतिक व साहित्यिक किस्से/कहानियां, संस्थान में आने वाले विशिष्ट जनों से जुड़ी गतिविधियों आदि की जानकारी प्रदर्शित की गई है।

संग्रहालय में उष्ट्र के महत्व को इंगित करने हेतु एक चिन्तक दृष्टिकोण भी उभर कर सामने आता है कि उष्ट्र की मानव जीवन के लिए क्या और कैसी उपयोगिता हो सकती है? जिसके बारे में चित्रों एवं नमूनों से जानकारी सम्प्रेषित की गई है। संस्थान में दो स्थानों पर ऊँट सवारी का आयोजन किया जा रहा है ताकि आमजन सामान्य सवारी के अलावा धोरों पर सवारी का भरपूर आनंद ले सकें। केन्द्र की मंशा है कि इससे उत्साहित होकर बहुत सारे ऊँट पालक इस कार्य को अपनाएं। कुछ ऊँट पालकों ने केन्द्र से प्रेरित होकर उष्ट्र सवारी व्यवसाय को अपनाया भी है। विशेषकर समुद्र के किनारे, दर्शनीय स्थलों के पास, जैसलमेर एवं बीकानेर में कुछ रेतीले धोरों पर।

समूह में आने वाले पर्यटकों के लिए ऊँट गाड़ा आधारित ऊँट सवारी विकसित की गई है क्योंकि इसमें पर्यटक परिवार के सभी उम्र के सदस्यों के साथ सवारी का आनन्द लेते हैं, इसलिए यह भी पर्यटकों के बीच में काफी लोकप्रिय है।

केन्द्र द्वारा उष्ट्र की खाद से निर्मित वर्मी कम्पोस्ट

केन्द्र द्वारा उष्ट्र खाद के बेहतर उपयोग को ध्यान में रखते हुए मींगनी वर्मी कम्पोस्ट इकाई में उष्ट्र मींगनी से वर्मी कम्पोस्ट बनाई जाती है। साथ ही पशु पालकों से इस तकनीक को साझा किया जाता है ताकि वे भी उसे अपनाकर कृषि व व्यवसाय के लिए सस्ते तरीके से इसे बना सकें। अच्छे परिणाम मिलने के कारण ऊँट मींगनी से निर्मित कम्पोस्ट को किचन गार्डन के लिए इस्तेमाल में लिया जाने लगा है। यह कम्पोस्ट केन्द्र में बिक्री हेतु उपलब्ध है।

वर्तमान में मशीनीकरण के बढ़ते उपयोग के कारण तथा ऊँट को राज्य पशु (2015) घोषित करने के बाद इस संबंध में विशेष विधेयक के कारण ऊँट को अन्य प्रदेशो में निष्क्रमण, बेचने/वध करने हेतु रोक लगा दी गई। ऐसे में इस पशु की घटती उपयोगिता के कारण पशु पालकों द्वारा उष्ट्र पालन को एक नये विकल्प के तौर पर अपनाने की आवश्यकता है। संस्थान के प्रसार कार्यक्रमों के माध्यम से इसे नई दिशा दिए जाने के महत्ती प्रयास किए जा रहे हैं ताकि इस प्रजाति को संबल मिल सकें।

उष्ट्र के लिए चारा एवं चरभूमियों का प्रबन्ध

प्रियंका गौतम[1], बनवारी लाल[2], बसंती ज्योत्सना[1] एवं महेंद्र कुमार राव[3]
[1,2]वैज्ञानिक, [3]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
[1,3] भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसन्धान केंद्र, बीकानेर
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसन्धान संस्थान, अविकानगर, राजस्थान

देश की लगभग दस प्रतिशत भूमि के साथ राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है। राजस्थान राज्य चार भौगोलिक क्षेत्रों में बंटा हुआ है, पश्चिमी रेतीले क्षेत्र, अरावली पर्वतमाला और अन्य पहाड़ियां, पूर्वी मैदानी और दक्षिण पूर्वी राजस्थानी पठार। कृषि और पशुपालन राजस्थान में आजीविका के प्रमुख स्रोत होने के कारण एक खास महत्व रखते हैं तथा आजीविका संवर्धन के लिए एक महत्वपूर्ण घटक का कार्य करते हैं। राज्य के वर्तमान भू–उपयोग में लगभग 20 प्रतिशत भूमि बंजर श्रेणी में मानी जाती है, जो कि काफी खेद का विषय है। समय के साथ शामलात भूमि के क्षेत्रफल व रखरखाव में निरंतर गिरावट देखी गई है। भूमि उपयोग में परिवर्तन, स्थानीय संगठनों की कमी और मान्यता ना मिलने के कारण रख–रखाव का पतन, स्थानीय जरुरतें जैसे लकड़ी एवं चराई के लिए भूमि का आवंटन एवं स्पष्ट सामुदायिक अधिकारों का अभाव, बढ़ती जनसंख्या का एकाधिक दबाव, खेती के तहत अधिक भूमि के उपयोग को प्रोत्साहन और भूमि वितरण में राजनीति आदि शामलात भूमि के कम होने के मुख्य कारण हैं। बंजर भूमि के रूप में परिभाषित यह जमीन अक्सर खनन, औद्योगिक विकास, जैव ईंधन की खेती आदि जैसे कार्यों में उपयोग होने लगती है जिसकी वजह से स्थानीय समुदायों को विस्थापित होकर अपने महत्वपूर्ण आजीविका के संसाधनों से वंचित होना पड़ता है।

राजस्थान के सूखे इलाके में खेती के बाद महत्वपूर्ण संपदा पशु ही है। राजस्थान के पश्चिमी हिस्सों में, जहां अक्सर सूखा पड़ता रहता है, लोगों का प्रमुख उद्योग पशुपालन है। प्राकृतिक चर भूमियाँ जिसमें किसी प्रकार की जुताई–गुड़ाई नहीं की जाती, वहाँ स्वतः उपलब्ध वनस्पतियों का समुचित संरक्षण व उपयोग ही चर भूमि के प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य है। ऐसी चर भूमियों की उत्पादकता एवं पोषकता बढ़ाने के लिए अवांछित वनस्पतियों को निकालकर वांछित किस्मों का समावेश किया जाना चाहिए। ऐसा करने के लिए न्यूनतम जुताई–गुड़ाई करनी चाहिए। इन चरागाहों के प्रबन्ध में चराई नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है। उष्ट्र चर भूमियाँ प्रायः विस्तृत रेगिस्तानी क्षेत्र में फैली हुई है। यहाँ वर्षा के अभाव में वनस्पतियों का भी अभाव होता है और इनमें कांटेदार किस्मों की बहुलता पायी जाती है। वनस्पतियों को लगाना एवं पालन करना एक कठिन कार्य है।

उचित फसल चक्र अपनाकर मृदा का उपजाऊपन बढ़ाया जा सकता हैं। फसल चक्र में खाद्यान्न फसलों के साथ दलहनी फसलों को भी उगाना चाहिए। दलहनी फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती है। साथ ही समृद्ध एवं टिकाऊ खेती के लिए मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा को भी बढ़ाती हैं। इसके लिए पूर्ण प्रचार एवं प्रसार की आवश्यकता है ताकि किसानों का रुझान इस ओर किया जा सके। भूमि के उपजाऊपन को बनाए रखने में जैविक कृषि विधियों का विशेष योगदान है। इसके अलावा खेत की तैयारी, फसल चक्र, कीट व रोग प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव, समय से बुआई, शस्य, भौतिक व यांत्रिक विधियों द्वारा खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है।

मृदा के उपजाऊपन को बढ़ाने में एकीकृत कीट/व्याधि प्रबंधन की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसमें कीटनाशकों एवं शाकनाशियों के साथ हानिकारक जीवों व खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए बायोएजेंट, बायोपेस्टीसाइड, कृषि प्रणालियों में बदलाव जैसे शून्य जुताई व कम जुताई को अपनाकर भी मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार किया जा सकता है। अनुसंधानों द्वारा यह भी पाया गया है कि खेत की बार–बार जुताई करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता है और न ही फसल की पैदावार में कोई अतिरिक्त वृद्धि होती

है। बल्कि बार–बार जुताई करने से उत्पादन लागत बढ़ती है। शून्य जुताई तकनीक में चूंकि खेत की जुताई नहीं करनी पड़ती है जिससे जमीन की सतह समतल बनी रहने के कारण परंपरागत विधि की अपेक्षा सिंचाई जल जल्दी ही ज्यादातर क्षेत्रों में फैल जाता है। इस विधि से फसलों की बुवाई करने पर खरपतवारों का भी कम जमाव होता है।

भूमि प्रबंधन का आधार खेतों की समतलता से है। किसानों ने खेतों की समतलता के महत्व को समझा और खेतों को समतल करने की कई पारंपरिक विधियों को अपनाया जिसमें कुछ लाभ प्राप्त हुए। परंतु इन पारंपरिक विधियों में खेत पूर्णतया समतल नहीं हो पाते हैं। आधुनिक कृषि तथा यंत्रों–लेजर लेवलर व लेवल मास्टर के प्रयोग से खेत को पूर्णतया समतल किया जा सकता है। पूर्ण समतल खेत की सिंचाई में पानी कम लगता है जिससे सिंचाई में खर्च होने वाली ऊर्जा बचती है। खेत में खाद एवं कीटनाशकों का फैलाव समान रूप से होता है जिससे मृदा की उर्वरता और उत्पादकता में सुधार होता है।

फसल विविधिकरण में उपलब्ध संसाधनों का बेहतर प्रयोग होता है। फसल विविधिकरण का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य का बचाव और उच्च कृषि बढ़वार बनाए रखने, ग्रामीण रोजगार सृजन व बेहतर आर्थिक लाभ पाने हेतु कृषि, बागवानी, वानिकी, पशुधन प्रणाली के पक्ष में अनुकूल स्थितियां पैदा करना है।

वांछित किस्मों का चयन व विकास

पाला, खेजड़ी, फोग, बावली, जाल, केर, लाना इत्यादि अनेक किस्में ऊँटों को बहुत पसंद है। अतः इन किस्मों को अधिकांश चरभूमि के वृद्धि में वरीयता देनी चाहिए। खरपतवार निकालते समय जो जगह खाली होती है, उस स्थान पर उपयोगी किस्म का पौधा या बीज लगा देना चाहिए। ऊँट विशेषकर झाड़ व वृक्ष की पत्तियों को खाता है, अतः उष्ट्र चरागाह में झाड़ व वृक्षों का विशेष रूप से समावेश किया जाना चाहिए। झाड़ की कई किस्में जैसे बोरडी, बाबली, केर, फोग इत्यादि को भी ऊँट आसानी से ग्रहण करता है तथा साथ ही बोरड़ी से प्राप्त पाला उष्ट्र पोषण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। बहुत से शाकीय पौधे जैसे बेकरिया, गोखरू, व अन्य घासों को ऊँट बड़े चाव से खाते हैं, विशेषकर वर्षा ऋतु में इनकी भरमार होती है। सूखी घास ऊँट कम पसंद करता है लेकिन सेवन, अंजन, धामन, गंथील, ग्रामना इत्यादि को हरी अवस्था में ऊँट चाव से खाते हैं। अतः उपरोक्त सभी किस्मों को जिन्हें ऊँट पसंद करते हैं, चरभूमियों में उपयुक्त विधियों द्वारा विकसित किया जाना चाहिए। उचित सरंक्षण, समय पर उर्वरक व खाद का प्रयोग एवं क्रमबद्ध चारे का प्रबंधन चारागाह विकास के लिए कारगर उपाय है।

महत्वपूर्ण चारा एवं घास वाली फसलें

शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों के उत्पादन को यूँ तो बहुत से वातावरणीय घटक प्रभावित करते हैं परन्तु मुख्य रूप से कम वर्षा ही सफल फलोत्पादन के मार्ग में बाधा है। अतः हमें ऐसे चारे वाली फसलें, घासों एवं वृक्षों तथा प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए जिन्हें जल की आवश्यकता कम होती हों, जिनकी वृद्धि, पुष्पन एवं फलन ऐसे समय पर होता हो, जिस समय जल की उपलब्धता सुनिश्चित हो, जड़ें गहरी जाती हों, क्षेत्र विशेष के लिए अनुकूल हों, सूखा अवरोधी हों, लवणीय–क्षारीय जल के प्रति सहिष्णु हों व आर्थिक–पर्यावरणीय दृष्टि से भी लाभकारी हों।

बाजरा

बाजरा उष्ण जलवायु की फसल है। यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसमें ज्वार से अधिक सूखा सहन करने की क्षमता होती है। उत्तर भारत में खरीफ के मौसम में ही बाजरे की खेती होती है। बाजरे की विभिन्न कटाई वाली किस्में भी विकसित की जा चुकी है, जिससे उच्च गुणवत्ता वाला चारा प्राप्त किया जा सकता है। बाजरे की फसल की वृद्धि के लिए उपयुक्त तापक्रम 20–30 डिग्री सेंटीग्रेड के मध्य होना चाहिए। बुवाई से लेकर कटाई तक फसल को उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। इसकी खेती 40 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में की जा सकती है। बाजरे की कड़बी भी ऊँट चाव से खाते हैं। उन्नत विधियों द्वारा संकर बाजरे की खेती करने पर औसतन 30–35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक दाने की उपज मिल सकती है। वर्षा आश्रित फसल की उपज वर्षा की मात्रा व उसके वितरण पर निर्भर करती है। बाजरे की कड़बी की उपज 80–100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिलती है। दानों को अच्छी तरह 3–4 दिनों तक धूप में सुखाया जाता

है जब दानों में नमी का अंश 13–14 प्रतिशत से कम रह जाए तब उन्हें बोरों में भरकर भंडार गृह में रखना चाहिए।

ज्वार

ग्रीष्मकाल और वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली घासकुल की चारा फसलों में ज्वार सबसे महत्वपूर्ण चारा फसल है जिसकी खेती ठन्डे पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रचलित है। इसमें अत्यधिक सूखा और अधिक वर्षा सहन करने की अद्‌भुत क्षमता पाई जाती है। ज्वार की एकल, दो और बहु कटाई देने वाली किस्में उपलब्ध हैं जो कि एक से छः कटाइयों में 50 से 100 टन प्रति हैक्टेयर हरा चारा उत्पादित करने की क्षमता रखती है। ज्वार फसल के पौधों में प्रारंभिक अवस्था में प्रूसिक एसिड नामक जहरीला पदार्थ पाया जाता है, इसलिए चारे के लिए इसकी कटाई फसल में 50 प्रतिशत पुष्पन होने पर अथवा पुष्पन से पूर्व फसल में सिंचाई देकर करने की सलाह दी जाती है।

लोबिया

लोबिया एक दलहनी फसल है जिसकी खेती ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में सफलता पूर्वक की जा सकती है। देश के ठन्डे पहाड़ी इलाकों को छोड़कर सभी राज्यों में लोबिया दाना–सब्जी–चारा फसल के रूप में उगाई जाती है। यह शीघ्र बढ़ने वाली और कटाई के बाद तेजी से पुनर्वृद्धि करने वाली फसल है। इसका हरा चारा मुलायम और पौष्टिक होता है जिसे पशु चाव से खाते हैं। ज्वार, बाजरा और मक्का के साथ मिश्रित फसल के रूप में इसकी खेती करने से गुणवत्ता युक्त चारा प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया सकता है। लोबिया की एकल फसल से 30–50 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त होता है। लोबिया से बेहतरीन गुणवत्ता का 'हे' और 'साइलेज' तैयार कर आपातकालीन समय में जानवरों को खिलाया जा सकता है। लोबिया की प्रमुख उन्नत किस्में यूपीसी–5286, ईसी–4216, यूपीसी–5287, यूपीसी–628, आईएफसी–8401, श्वेता आदि हैं।

जई

यह घासकुल की शीत ऋतु में उगाई जाने वाली फसल है जिसकी खेती मुख्यतः बिहार, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में की जाती है। इसकी बढ़वार अच्छी होती है और कटाई पश्चात पुनर्वृद्धि तेजी से होती है। इसका हरा चारा मुलायम और पचनीय होता है। इससे औसतन 30–50 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त होता है। इससे उत्तम किस्म का 'हे' और 'साइलेज' बनाया जा सकता है। जई की उन्नत किस्मे केंट, यूपीओ–212, ओ एस–6, ओएस–7, जेएचओ–822, जेएचओ–851 और आरओ–19 आदि है।

स्टाइलो घास

स्टाइलो एक फलीदार पौधा है जो सालभर बढ़ने वाला लंबवत चारा है और यह चारा ब्राजील का देसी पौधा है। आमतौर पर, स्टाइलो दो मीटर की ऊँचाई तक बढ़ता है। स्टाइलो अकाल प्रतिरोधी और फलीदार फसल का एक अच्छा चारा है और इसके लिए कम बारिश की जरूरत पड़ती है। स्टाइलो का उत्पादन उष्णकटिबंधीय मौसम में किया जा सकता है। यह फसल कम उत्पादकता वाली अम्लीय मिट्टी और कम जल निकासी वाली मिट्टी में भी सहनशील होती है। स्टाइलो में अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा 16 से 18 फीसदी होती है। स्टाइलो के लिए सबसे अच्छा मौसम जून–जुलाई से सितंबर–अक्टूबर होता है। जब बुआई की दर की बात आती है तो, एक कतार में बुआई की दर 30×15 सेमी होती है, आवश्यक बीज दर 6 से 7 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होती है और प्रसारण या फैलाव 10 से 11 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होता है। पुष्पण के स्तर पर बुआई के 70 से 75 दिनों के बाद स्टाइलो कटाई के लिए तैयार हो जाता है और बाद वाली कटाई बढ़त के ऊपर निर्भर करती है। फसल के पहले साल के दौरान (स्थापना का दौर), फसल की कम पैदावार हो सकती है और आने वाली फसल ज्यादा हो सकती है और तीसरे साल से पैदावार प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष 25 से 40 टन प्राप्त की जा सकती है।

ब्लू बफेल घास

इस घास की किस्म चरागाह की भूमि के लिए अनुकूल है और सदाबहार होती है। इस घास की खेती के लिए अच्छी तरह से सूखी हुई मिट्टी जिसमे कैल्शियम की उच्च मात्रा शामिल हो, वह अनुकूल होती है। इस फसल में प्रति हेक्टेयर 5 से 7 किलोग्राम बीज की जरूरत पड़ती है। आमतौर पर पहली कटाई, बुआई के 70 से 75 दिनों के बाद की जा सकती है और अगली 4 से 5 कटाई, फसल की बढ़ोत्तरी पर निर्भर करती है। इस घास की पैदावार एक साल में 4 से 5 बार की कटाई के बाद प्रति हेक्टेयर

35 टन तक होती है।

सुबबूल

यह सबसे तेज गति से बढ़ने वाला चारे का पेड़ है जो अधिकांश तौर पर बीज का उत्पादन करता है। इस पौधे को लगाने का सबसे अच्छा समय जून–जुलाई का महीना है। सुबबूल की मुख्य किस्म में हवाईयन जायंट और सीओ 1 शामिल है। वर्षा प्रभावित क्षेत्र में अनुकूल किस्में के–8, जायंट आईपीएल और सीओ–1 है। बीजारोपण के 6 महीने के बाद इसके पौधे पहली कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। हालांकि, शुरुआती कटाई तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक कि तने की लम्बाई कम से कम तीन मीटर ना हो जाए या फिर पौधा, एक बीज उत्पादन का चक्र पूरा कर लें। दूसरी कटाई मौसम और विकास को देखते हुए 45 से 80 दिनों के भीतर किया जा सकता है। अगर क्षेत्र अकाल पीड़ित है तो पेड़ को दो साल तक बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिए ताकि उसकी जड़ें गहराई तक समा सके। पेड़ की लंबाई जमीन के स्तर से 95 से 100 सेमी की ऊँचाई तक होनी चाहिए।

चारा पेड़ों में लोपिंग प्रबंधन

चारा वृक्षों का प्रबंधन जैसे कि लोपिंग और उर्वरक अनुप्रयोग, विशेष रूप से कृषि वानिकी प्रणाली के साथ कुछ वर्षों में सिस्टम उत्पादकता और पानी के उपयोग में सुधार किया जा सकता हैं। वृक्ष प्रजातियों के साथ भिन्न पेड़ के उचित लोपिंग प्रबंधन, चारा पेड़ों और एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम में संबंधित फसलों की पूरी क्षमता प्राप्त कर सकते हैं। पेड़ों की लोपिंग न केवल हरे चारे की आपूर्ति करती है बल्कि यह वृक्ष के नीचे उगने वाली फसल के लिए भी सहायक होता है। वृक्षों से अधिक हरे चारे के लिए उनको अलग–अलग उम्र में अलग–अलग तीव्रता और अंतराल पर वृक्षों को लूप किया जाना चाहिए। अरडू वृक्ष को दिसंबर और मई–जून महीने में साल में पूरी तरह से दो बार लूप किया जा सकता है जिससे की अधिकतम चारा लिया जा सके। खेजड़ी के छोटे पौधों को साल में एक बार और बड़े वृक्षों को साल में दो बार लोप्प किया जा सकता है और यह मई–जून और नवम्बर–दिसम्बर माह में करना चाहिए। खेजड़ी के एक पौधे के ऊपरी सिरे से 58 कि.ग्रा. हरी पत्तियों का चारा, मध्य दो तिहाई सिरे से, 28 किलो पत्तियों का चारा तथा बिलकुल नीचे के सिरे से 20 किलो पत्तियों का हरा चारा लिया जा सकता है। 300 से 400 मिमी वर्षा वाले क्षेत्रों में खेजड़ी के एक पौधे से 25 किलोग्राम सूखा चारा, 5 किग्रा फली एवं 2 किग्रा बीज का उत्पादन आसानी से लिया जा सकता है।

निष्कर्ष

राजस्थान की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि कार्यों एवं पशुपालन पर ही निर्भर करती है तथा कृषि के उपरान्त पशुपालन को ही जीविका का प्रमुख साधन माना जा सकता है। राजस्थान में प्रायः सूखे की समस्या रहती है। इसी वजह से पशुओं को पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध नहीं हो पाता। अतः अधिक उत्पादकता के लिए चारा की उन्नत किस्मों का चयन, शस्य क्रियाएँ एवं चर भूमियों के उपयुक्त प्रबंधन से हम पशुपालन से सफलतापूर्वक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

बावली : पश्चिमी राजस्थान की बहुपयोगी झाड़ी

जे. पी. सिंह[1], बी. एस. राठौड़[2] एवं एम. एल. सोनी[2]
प्रधान वैज्ञानिक
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

प्राचीन काल से ही पश्चिमी राजस्थान में बहुवर्षीय काष्ठीय पादप प्रजातियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राष्ट्रीय वन नीति द्वारा निर्धारित लक्ष्यों में वनस्पति एवं वन्य जीवों के संरक्षण, जैव विविधता को बनाए रखने, मृदा एंव नमी संरक्षण, ग्रामीणों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति व वन संरक्षण एवं प्रबन्धन पर विशेष बल दिया गया है। इन सभी परियोजनाओं के सफल क्रियान्वयन हेतु यहाँ की स्थानीय झाड़ियों की अहम भूमिका रही है। मरू क्षेत्र में पायी जाने वाली प्रमुख झाड़ियाँ जैसे फोग, बावली, खींप, बोरड़ी, लाणा, खारा लाणा, लानी, लूनी, गंगेरन, गुंदी, कंकेरा, मुराल, आक, अरनी आदि का शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र (एरिड–इको सिस्टम) में महत्वपूर्ण स्थान है। उक्त झाड़ियों में बावली का अपना विशेष महत्व रहा है। बावली का वानस्पतिक नाम 'एकेशिया जेक्मोनसाई' है तथा लेग्युमिनोसी कुल का सदस्य है। राजस्थान में इसे बुई–बावली, गुली बावली, कीकर बावली आदि नामों से जाना जाता है तथा गुजरात के क्षेत्रों में इसे 'राता–बावली' कहते हैं। भारत में यह मुख्यतः राजस्थान, हरियाणा एवं गुजरात के शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है। पश्चिमी राजस्थान में यह बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर व श्रीगंगानगर जिलों में मिलती है। बीकानेर में यह जालवाली, करणीसर, लाखुसर, बरजू इत्यादि क्षेत्रों में पायी जाती है। यह प्रायः रेतीले टिब्बों, टिब्बों के मध्यस्थ मैदानी क्षेत्रों में मिलती है।

वानस्पतिक विवरण

बावली एक बहुशाखीय कंटीली झाड़ी है, इसकी छाल गहरी भूरी होती है। इसके कांटे लम्बे (लगभग 2.5 से 5 से. मी.) व सीधे होते हैं। इसके पुष्प पीतवर्णी खुशबुदार होते हैं जो कि जनवरी–फरवरी में आते हैं। इसकी फलियाँ लगभग 2 से 7 से.मी. लम्बी व लगभग 1.5 से.मी. चौड़ी होती हैं जो कि मार्च–अप्रैल में परिपक्व अवस्था में आती है। फलियों में 2 से 8 तक बीज होते हैं। बीज गोल, चपटे, भूरे रंग के होते हैं।

मृदाएँ

सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त मृदा नमूनों के परीक्षण के आधार पर यह पाया गया कि बावली रेतीली मृदाओं, जिनमें वायु व जल की पारगम्यता सुलभ हो, पायी जाती है। इन मृदाओं का पी.एच. मान 7.8 से 8.7 पाया गया जो कि उभयमान से क्षारीयता को दर्शाता है। विद्युत चालकता की दृष्टि से भी बावली सामान्य मृदाओं जिनकी विद्युत चालकता 0.2 से 0.3 डेसी सीमन्स प्रति मीटर हो, पायी जाती है। कठोर मृदाएँ जिनमें सिल्ट या क्ले की मात्रा अधिक हो, बावली हेतु उपयुक्त नहीं है। इसके विपरीत रेतीले टिब्बों व टिब्बों के मध्य रेतीला भाग जहाँ नवीन मृदा इकट्ठी हुई हो, में बावली बहुतायत रूप से पायी जाती है। प्राकृतिक दशा में लवणीय व क्षारीय मृदाओं में भी बावली पायी जाती है। जैविक कार्बन, नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम आदि आवश्यक तत्वों की कमी बावली की वृद्धि को प्रभावित नहीं करती है। इसके विपरीत इस झाड़ी ने अपने आपको उन विषम परिस्थितियों के अनुकूल ढाला है जहाँ इन सभी आवश्यक तत्वों की कमी पायी गयी है।

उपयोग

पल्लव चारा

रेतीले टिब्बों में जहाँ आज भी इसके प्राकृतिक क्षेत्र सुरक्षित है, वहाँ बकरी व ऊँट इसे चाव से खाते हैं। गाय व भेड़ इसे आहार के रूप में अधिक पसंद नहीं करते हैं। बकरियां इसे वर्ष भर चरती है। इसकी शुष्क फलियां एवं बीज सभी पशु खाते हैं। इसकी कोमल हरी शाखाओं व पत्तियों को काटकर चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी शाखाओं को दिसम्बर–जनवरी में काटकर एकत्र करते हैं तथा झाड़कर इसकी सूखी पत्तियों को इकट्ठा कर लेते हैं, तत्पश्चात खेजड़ी की लूम की भाँति इसे भी भेड़, बकरी एंव ऊँटों को खिलाते हैं। इसकी शुष्क पत्तियों

को अन्य चारों के साथ भी मिलाकर पशु आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है। बावली के बीजों के जर्मप्लाज्म संकलन एंव सर्वेक्षण के दौरान बीकानेर व सूरतगढ़ के आसपास के ग्रामवासियों व चरवाहों से भी इसके चारे की गुणवत्ता के बारे में जानकारी प्राप्त की गयी। ऐसा माना जाता है कि इसके बीजों को बकरी व ऊँटों को खिलाने से शारीरिक वजन बढ़ता है साथ ही शरीर की ऊँचाई में भी वृद्धि होती है। हिरण एंव अन्य वन्य प्राणी भी बावली की झाड़ी को आहार के लिए उपयोग में लेते है। गर्मियों के समय बकरी (चित्र 1), ऊँट व वन्य प्राणियों के लिए महत्वपूर्ण पल्लव चारा है।

चित्र 1. बावली झाड़ी को चरती बकरियां

खाद्य हेतु

पश्चिमी राजस्थान में कुछ स्थानों पर इसके पके बीजों का उपयोग (खेजड़ी व कुमठ के बीजों की तरह) तरकारी में करते हैं। कीकर व कुमट की भांति बावली की झाड़ियों से भी गोंद की प्राप्ति होती है तथा ग्रामीण इसे अच्छी गुणवत्ता का मानते हैं (चित्र 2)। इसमें अप्रैल में गोंद निकलना प्रारम्भ होता है जो कि मई–जून तक निकलता है। वर्षा होने के बाद गोंद निकलना बंद हो जाता है। लगभग 3–4 वर्ष पुरानी झाड़ी से गोंद निकलना प्रारम्भ होता है। किन्तु सभी स्थानों पर समान गोंद नही निकलता। कुछ झाड़ियों में कम तथा कुछ में अधिक गोंद निकलता है। सर्वेक्षण के दौरान देखा गया कि बीकानेर जिले के बरजू, लाखूसर व जालवाली क्षेत्रों में पायी जाने वाली बावली द्वारा गोंद काफी मात्रा में निकलता है। जबकि सूरतगढ़ में पाई जाने वाली बावली से बहुत कम मात्रा में गोंद निकलता है। एक पूर्ण विकसित झाड़ी से 500 ग्राम तक गोंद प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि उच्च तापक्रम होने से अधिक गोंद निकलता है। गर्मियों में ग्रामीण लोग बावली की झाड़ियों से गोंद इकट्ठा करते हैं और स्थानीय बाजार में बेचते हैं। बावली के गोंद की यहां काफी मांग रहती है। स्थानीय बाजार में इसका गोंद रू. 800–1000 प्रति कि.ग्रा. तक बिकता है।

औषधीय गुण

बावली के गोंद को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। पीठ व जोड़ों के दर्द निवारण हेतु 100 ग्राम गोंद को 1 लीटर जल में रात्रि को भीगोकर रखा जाता है। दूसरे दिन सुबह इस गोंद को 100 ग्राम देसी घी के साथ मिलाते हैं और 10 दिन तक खाली पेट लेते हैं जो कि पीठ व जोड़ों के दर्द में फायदा करता है। सर्दियों में इसके गोंद से हलवा बनाते हैं। इसमें 250 ग्राम गोंद, 250 ग्राम गेहूँ का आटा तथा चीनी व देसी घी मिलाते हैं और 10 दिन तक खिलाते हैं। यह भी जोड़ों के दर्द को दूर करता है। लू निवारण हेतु गर्मियों में 100 ग्राम गोंद को नये मिट्टी के बर्तन में 250 मि.ली. पानी में भिगोते हैं और प्रातः इसमे दूध व शक्कर मिलाते है और इसे शीतल पेय के रूप में लेते हैं जो कि लू से बचाव करता है। 25 ग्राम गोंद को जल में भिगोया जाता है तथा उसमें 50 ग्राम घी

चित्र 2. बावली झाड़ी से प्राप्त गोंद

मिलाकर रोगी को दिया जाता है जिसे लू लगी हो, इसके सेवन से आराम मिलता है।

ईंधन हेतु

परम्परागत रूप से इसकी शुष्क शाखाओं का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है। विशेषकर इसके कोयले को सुनार एवं लोहार उपयोग में लेते हैं। इससे अच्छी गुणवत्ता का कोयला भी प्राप्त होता है। किन्तु इसमें लम्बे–सीधे काँटों के कारण रखरखाव में भी परेशानी होती है।

अन्य उपयोग

कालान्तर में जब बांवलियों की संख्या अधिक थी, किसान इसे अपने खेतों की मेड़ों पर लगाते थे। इसकी शुष्क कंटीली शाखाओं को जैविक बाड़ (फेन्सिंग) हेतु प्रयोग करते थे (चित्र 3)। आदिवासी इसकी शाखाओं को टोकरियां बनाने के काम में लेते हैं व स्थानीय बाजारों में बेचते हैं। इसकी काष्ठ से छाछ मथने की रवाई भी बनायी जाती है जो गावों में अत्यधिक प्रचलन में है एवं माना जाता है कि यह अच्छी गुणवत्ता की होती है। इसकी छाल का प्रयोग चमड़ा उद्योग में करते हैं जो कि चमड़े को भूरा या काला रंग प्रदान करती है। आदिवासी क्षेत्रों में छाल का प्रयोग महुआ के फूलों के साथ देसी मदिरा के आसवन में भी करते हैं।

चित्र 3. बावली झाड़ी परम्परागत जैविक बाड़ के रूप में

टीब्बा स्थिरीकरण

पश्चिमी राजस्थान में रेतीले टिब्बों के स्थिरीकरण हेतु यह एक महत्वपूर्ण झाड़ी रही है। रेतीले टिब्बों व टिब्बों के मध्य रेतीला भाग जहाँ वनस्पतियों का अभाव रहता है, यह अच्छी वृद्धि करती है। इसकी बहुशाखीय प्रकृति व घना जड़तंत्र मृदा को जकड़े रखता है जिसके परिणाम स्वरूप यह टिब्बों के प्रसार को रोकती है एवं मृदा संरक्षण में अहम भूमिका निभाती है (चित्र 4)।

चित्र 4. बावली टीब्बा स्थिरीकरण हेतु महत्वपूर्ण स्थानीय झाड़ी

परम्परागत संरक्षण

कालान्तर में वनस्पतियों के अत्यधिक दोहन से यह झाड़ी भी अछूती नहीं रही। सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि बीकानेर जिले में ही पिछले छः दशकों में इसकी संख्या तेजी से घटी है तथा कई स्थानों पर इसकी झाड़ियाँ समाप्त हो गयी है। लेकिन जन सहयोग के कारण आज भी कुछ क्षेत्रों में इसके प्राकृतिक परिवेश सुरक्षित है। इसका प्रमुख कारण विगत वर्षों में ग्रामवासियों का इसके संरक्षण की दिशा में ध्यान केन्द्रित होना है। सूखे व अकाल के समय अन्य प्रजातियाँ जैसे इजरायली बबूल आदि सूख जाती है। लेकिन इस पर सूखे का कम प्रभाव पड़ता है। सूखे के समय जब घास तक नहीं हो पाती, उस समय इसकी पत्तियाँ व फलियाँ ऊँटों व बकरियों के लिए चारे का अच्छा स्रोत साबित होती हैं। पिछले दशकों में पश्चिमी राजस्थान में अकाल व सूखे के समय भी इन झाड़ियों से कुछ न कुछ चारा अवश्य मिला है।

सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि बीकानेर जिले में बरजू व जालवाली ग्रामों में इसकी बहुउपयोगिता को देखते हुए ग्रामवासियों ने विगत वर्षों में इसके संरक्षण व संवर्द्धन की ओर ध्यान दिया है। ग्रामवासियों ने इसकी हरी झाड़ियों को काटने के लिए दण्ड का प्रावधान भी किया है। जिसके परिणाम स्वरूप इसके संरक्षण के प्रति जन चेतना का आभास हुआ है जो कि जैव विविधता के संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण व सकारात्मक कदम है।

निष्कर्ष

बावली पश्चिमी राजस्थान, विशेषकर रेतीले टीबों के लिए बहुपयोगी झाड़ी है। दूसरी वनस्पतियों के साथ यह टीबों के क्षेत्रों में मरूस्थलीकरण को रोकने में अहम भूमिका रखती है। जनसहभागिता को ध्यान में रखते हुए, इसके संरक्षण एंव संवर्धन की आवश्यकता है। क्योंकि स्थानीय वनस्पतियों में प्रचंड गर्मी, तेज आँधी व सूखा सहने की क्षमता है। अभाव के समय यह पशुओं विशेषकर ऊँट व बकरी के लिए चारे का भी स्त्रोत है। साथ ही इसकी झाड़ी से प्राप्त गोंद शुष्क क्षेत्र के ग्रामवासियों के लिए आजीविका का भी एक स्रोत है।

जैविक पशुपालन हेतु चारा उत्पादन एवं प्रबन्धन

राजेश नेहरा
सहायक आचार्य
पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय, राजुवास, बीकानेर (राजस्थान)

दुनिया की सभी सभ्यताएँ प्राचीन समय से कृषि एवं पशुपालन द्वारा धन कमाकर जीवन यापन करती रही है। भारत वर्ष में प्राचीन सभ्यताएँ स्वावलम्बी कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर रही हैं। जब भी कृषि एवं पशुपालन में स्वावलम्बन समाप्त हुआ, सभ्यताएँ नष्ट हो गई। भारत में किसान अपने परम्परागत ज्ञान को परिमार्जित करते हुए कृषि एवं पशुपालन द्वारा मिट्टी से सोना बनाने का कार्य करता रहा है। लेकिन साठ के दशक के आसपास हरितक्रांति का सूत्रपात हुआ एवं खाद्यान में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु अधिक से अधिक भूमि खेती के लिए उपयोग में ली जाने लगी एव संकर बीजो का उपयोग होने लगा। भारतीय पशुओं को बाहरी पशुओं से संकर क्रॉस करवाया जाने लगा। प्राकृतिक एवं जैविक खाद की जगह रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों का उपयोग होने लगा। नब्बे के दशक तक भारतवर्ष खाद्यान उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया एवं वर्तमान में भारत खाद्यानों का निर्यात भी कर रहा है। लेकिन रासायनिक खाद, कीटनाशक एवं खरपतवार नाशकों के हानिकारक प्रभाव भी जल्दी ही दिखाई देने लगे। जमीन अपनी उपजाऊपन क्षमता खोने लगी। रासायनिक खादों, कीटनाशकों एवं खरपतवार नाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से बीमारियां बढ़ने लगी। खेती की लागत बढ़ती गई जिससे किसान कर्जदार होने लगे एवं यहां तक आत्महत्या जैसे कदम भी उठाने लगे।

आज रासायनिक खेती की जगह जैविक खेती की महती आवश्यकता है। जिससे जीव जन्तुओं के पारिस्थितिकी तन्त्र में सन्तुलन बनाकर उत्पादन को बरकरार रखा जा सके साथ ही पशु–पक्षियों, मनुष्यों में होने वाली व्याधियों को रोका जा सके एवं कृषि तथा पशुपालन पुनः स्वावलम्बन की ओर लौट सके।

जैविक पशुपालन हेतु चराई को महत्ता दी जाती है ताकि पशु अपनी प्राकृतिक अवस्था में रहकर शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त कर सके। पशुओं की चराई हेतु चारागाह विकसित किये जाने चाहिए। साठ के दशक से पूर्व भारत में पशुओं के चरने हेतु गोचर भूमि, जोहड़ व ओरन के रूप में चारागाह उपलब्ध होते थे लेकिन जमीन खेती के लिए उपयोग में ली जाने लगी एवं चारागाह सिकुड़ते चले गये। कुछ चारागाहों में सरकारी भवन, स्कूल, अस्पताल इत्यादि बन गए एवं बाकी जमीन अतिक्रमण की भेंट चढ़ती जा रही है। अतः वर्तमान में पशुओं के चरने के लिए चारागाह काफी कम रह गए हैं।

जैविक पशुपालन हेतु पोषण संबधी मुख्य तथ्य

- जैविक पशुधन उत्पादन हेतु चराई व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है।
- जैविक पशुधन उत्पादन मुख्य रूप से स्वयं के फार्म में उत्पादित चारा दाना पर आधारित होता है। पशुओं को वातावरण अनुसार एवं उनके शारीरिक क्रियाओं की आवश्यकतानुसार राशन दिया जाना चाहिए।
- अत्यधिक कमी के समय या आपातकाल की स्थिति में अजैविक चारा केवल कुछ सीमित अवधि के लिए खिलाया जा सकता है। विटामिन्स तथा वृहत एवं सूक्ष्म खनिज तत्व तथा खाद्य सम्पूरक भी प्राकृतिक संसाधनो से ही लिये जाने चाहिए। अति आवश्यक होने एवं कमी या गुणवत्तापूर्ण पदार्थ न मिलने की अवस्था में ही उन्हें अन्य स्रोतों से लिया जा सकता है।
- दाना चारा शारीरिक आवश्यकतानुसार दिया जाना चाहिए। सान्द्र–40 प्रतिशत एवं चारा–60 प्रतिशत के अनुपात में मिलाकर देना चाहिए और साथ ही चराई को प्राथमिकता दी जानी चाहिए एवं चराने से यदि आवश्यक पोषक पदार्थो की पूर्ति नहीं होती है तो ही खाद्य सम्पूरक दिये जाने चाहिए।

- प्रजाति के अनुसार खाद्य पदार्थ दिये जाने चाहिए। जैविक पशुधन उत्पादन में नियमानुसार 80 प्रतिशत खाद्य चारा जैविक स्रोतो से होना चाहिए। संतुलित आहार दिया जाना चाहिए एवं आवश्यक पोषक तत्व जैसे ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, खनिज तत्व, विटामिन्स आदि की इसी से पूर्ति होनी चाहिए। प्रोटीन (नाइट्रोजन) पूर्ति हेतु यूरिया का प्रयोग प्रतिबंधित है।

जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबन्धन निम्नलिखित बिंदुओं में विभाजित कर नीचे क्रमबद्ध उल्लेखित है:

1. चारागाह से जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबंधन
2. चारा फसलों से जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबंधन
3. पेड़ पौधों एवं झाड़ियों से जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबंधन
4. फसलों के अवशेषों का जैविक चारे के रूप में उपयोग एवं प्रबंधन
5. जैविक विधि से उत्पादित हरे चारे का संरक्षण

1. चारागाह से जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबंधन

जैविक पशुधन उत्पादन हेतु पशु चराई व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है। इस हेतु चारागाह का विकास किया जाना चाहिए। साठ के दशक से पूर्व हमारे देश में रसायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां आदि उपयोग में नहीं ली जाती थी एवं जो चारागाह थे, उनमें उत्पन्न चारा जैविक चारा था लेकिन हरित क्रांति में रसायनिक खादों, कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशकों के उपयोग से चारागाह भी दूषित हो गये हैं एवं उनमें उत्पन्न चारा जैविक नहीं रहा। अतः अब जैविक चारागाह विकसित करना जैविक पशुधन के लिए आवश्यक है।

जैविक चारागाह विकसित करने हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- आनुवांशिकीय अभियान्त्रिकी द्वारा उत्पन्न बीजों का उपयोग चारागाह विकसित करने हेतु नहीं करना चाहिए।
- जिन बीजों का उपयोग किया जाए, वे जैविक विधि से ही उत्पन्न होने चाहिए। यदि इस प्रकार के बीज उपलब्ध नहीं हो तो परम्परागत बीज जो किसी भी प्रकार के रसायन से उपचारित नहीं हो, काम में लिए जा सकते हैं।
- चारागाह विकसित करने हेतु भूमि की अच्छी तरह जांच करवा लेनी चाहिए। जिस भूमि में पहले से रसायन खाद, कीटनाशक, खरपतवार नाशक या अन्य कोई संश्लेषित पदार्थ उपयोग किया गया हो, उस भूमि को चारागाह विकास हेतु उपयोग में नहीं लेना चाहिए।
- जैविक चारा उत्पादन हेतु धीरे–धीरे भूमि का जैविक रूपान्तरण करना चाहिए।
- परम्परागत चारा उत्पादन को जैविक चारा उत्पादन में बदलने में लगने वाले समय को रूपान्तरण काल कहते हैं। रूपान्तरण काल में समय–समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए।
- भूमि रूपान्तरण में दो से तीन वर्ष का समय लग सकता है। जैविक चारा उत्पादन तभी माना जाता है जब उसका पूरी तरह से सत्यापन हो जाएं।
- खाद के रूप में पशुओं के गोबर की खाद, विघटित होने वाले कार्बनिक पदार्थ ही काम में लेने चाहिए। मानव विष्टा खाद के रूप में उपयोग नहीं ली जा सकती है।
- वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खाद, हरा चारा खाद इत्यादि काम में लेना चाहिए।
- खनिज तत्वों का उपयोग भूमि की आवश्यकतानुसार आवश्यक होने पर ही किया जाना चाहिए।
- सभी संश्लेषित रसायन खाद पूरी तरह प्रतिबंधित है। इनका उपयोग कतई नहीं करना चाहिए।
- फार्म की भूमि का धीरे–धीरे परम्परागत रूप से जैविक भूमि में रूपान्तरण करना चाहिए।
- संश्लेषित खरपतवार नाशक, कवकनाशक, कीटनाशक का उपयोग नहीं करना चाहिए।
- इस हेतु स्वयं के फार्म पर पैदा किए हुए जैविक जड़ी बूटियों से तैयार पदार्थ ही प्रयोग में लेना चाहिए।

भूमि प्रबंधन

प्राकृतिक रूप से चारागाह गोचर, जोहड़ एवं ओरन में समतल असमतल भागों में स्थित होते हैं। लेकिन कृत्रिम जैविक चारागाह विकसित करने हेतु इनको प्रायः समतल

भू–भागों में कृषि फसलों की भांति विकसित किया जा सकता है।

- सिंचित या अच्छी वर्षा एवं उपजाऊ भूमि को चारागाह विकास के लिए काम में लिया जाना चाहिए।
- जहां तक संभव हो ऐसी भूमि का चयन करना चाहिए जो पशुशाला के नजदीक हो।
- जैविक चारा उत्पादन हेतु चारे की नवीन प्रजातियों को लगाने से पूर्व चारागाह भूमि की मृदा संरचना, मृदा की गहराई, पी.एच. मान, जल निकास, जल संग्रहण की स्थिति, भूमि ढाल एवं वहां की जलवायु सम्बन्धित जानकारियां प्राप्त करना आवश्यक है।
- जहाँ वायु द्वारा मृदा–क्षरण ज्यादा होता है, वहां वायु अवरोधक वृक्षों व झाड़ियों की लाइनें लगानी चाहिये, टिब्बों के स्थिरीकरण के लिए घासें लगाई जा सकती है।
- अधिक ढलान वाली भूमि में ढाल के लम्बवत, समोच्च नाली बनानी चाहिए जिससे बहते हुए पानी की गति कम की जा सके। यहां मिट्टी के समोच्च अवरोध बना कर उस पर स्थानीय वनस्पतियों जैसे सेवण घास, धामन घास तथा मूंजा भी लगा सकते हैं। जिससे मृदा कटाव रूकेगा तथा साथ ही साथ चारागाह भूमि में वर्षा जल का संरक्षण भी किया जा सकेगा।

वनस्पति प्रबन्धन

- जैविक चारागाह की सुरक्षा के लिए चारों ओर बाड़ लगाना आवश्यक है। इसके लिए पत्थर की दीवार, मिट्टी की डोली, कंटीले तार अथवा कंटीली झाड़ियों की बाड़ लगानी चाहिए। सजीव बाड़ सबसे सस्ती तथा सहज तैयार होती है। जहाँ थोर जैसी कांटेदार वनस्पति उपलब्ध हो, वहाँ उनकी दो लाइनों में रोपाई कर सकते हैं।
- चारे की ऐसी प्रजातियों को उगाना चाहिए जो स्थानीय वातावरण के प्रति अनुकूलित एवं शीघ्र बढ़ने वाली, अधिक वानस्पतिक उपज देने वाली, उच्च पोषक मान तथा सूखे के प्रति सहनशील हो।
- चारागाह में छायादार व चारा उत्पादक वृक्षों को अधिक से अधिक लगाया जाए जिससे चारा उपज की कुल उपलब्धता में वृद्धि हो सके तथा चारागाह के साथ ही वृक्षों, झाड़ियों से जैविक चारा उत्पादन किया जा सके।
- चारागाह क्षेत्र में बहुवर्षीय झाड़ियों की आवश्यकतानुसार कटाई करनी चाहिए जिससे नई विकसित शाखाओं की मुलायम व स्वादिष्ट पत्तियों को पशु आसानी से चर सके।
- इन जैविक चारागाहों में बाहरी पशुओं को चराई के लिए नहीं भेजना चाहिए क्योंकि ये पशु चारागाहों को अपने मल–मूत्र से दूषित कर सकते हैं जिसमें परजीवी के अंडे होते हैं।

जल प्रबन्धन

- चारागाह क्षेत्र में जलसंग्रहण संरचना जैसे खड़ीन, नाड़ी, जोड़, तलाई, टांका तथा पानी की खेलियाँ आदि का निर्माण कराना चाहिए, जिससे पशुओं को पीने का पानी तथा वृक्षारोपण जैसे कार्य में सिंचाई की व्यवस्था की जा सके। इसके लिए जल संग्रह हेतु बड़े कच्चे या पक्के हौद बनाए जा सकते हैं।
- अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जल निकासी की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

चराई प्रबन्धन

- नवीन स्थापित चारागाह में शुरू के एक दो वर्ष पशुओं की सीधी चराई नहीं करनी चाहिए तथा यहां से चारा काट कर ही पशुओं को खिलाना चाहिए।
- चारागाह भूमि में चक्रवत चराई विधि लाभदायक रहती है। इसके लिए चारागाह को बाड़ लगाकर कई भागों में बांट दिया जाता है। जब एक भाग पर पशु चराई कर लें, तब उन्हें दूसरे भाग पर चरने देना चाहिए। जिससे पहले वाले भाग में वनस्पतियों को पुनः वृद्धि के लिए समय मिल जाता है। इस व्यवस्था से चराई समान रूप से होगी तथा चारागाह में वनस्पतियों की वृद्धि भी ठीक प्रकार से होती रहेगी।

जैविक चारागाह के लिए प्रमुख घासों की बीज दर एवं बुआई विधि

क्र.स.	घास	बीज दर (किग्रा./प्रति हैक्टेयर)
1	सेवण	5–8
2	धामण	4–6
3	मोडा धामण	4–5
4	ग्रामना	2–3

जैविक चारागाह के लिए महत्त्वपूर्ण घासें व उनकी उन्नत किस्में

क्र.स.	घास	उन्नत किस्में
1	सेवण	काजरी 305, काजरी 317, काजरी 319
2	धामण	काजरी–76, काजरी 296, काजरी 175
3	मोडा धामण	एस. 3108, मोओपो, काजरी 75, बंडल अंजन
4	ग्रामना	काजरी 400, काजरी 451, मारचल 8

जैविक चारागाह विकसित करने हेतु ग्रामवासी परस्पर मिलकर सामुदायिक स्तर पर प्रयास कर सकते हैं। इस हेतु सामूहिक प्रयास अच्छा रहता है जिससे जैविक चारागाह विकास की जिम्मेदारी उठाए तो प्रत्येक गाँव का अपना विकसित जैविक चारागाह होगा, जिससे पशुधन की वृद्धि के साथ–साथ उनका जीवन स्तर भी ऊँचा उठेगा।

2. चारा फसलों से जैविक चारा उत्पादन एवं प्रबंधन

चारा फसलों से जैविक चारा उत्पादन हेतु भूमि, बीजों एवं खाद पानी आदि का चुनाव उसी प्रकार करना चाहिए जैसे चारागाह विकसित करने हेतु किया जाता है। सिंचाई वाले क्षेत्रों को छोडकर अधिकांश क्षेत्रों मे चारा फसलें वर्षा ऋतु में ही बोई जाती है और वर्षा की समाप्ति पर इनकी उपलब्धता भी कम हो जाती है। हरे चारे मे दो प्रकार की फसल उगाई जा सकती है, दलहनी फसलें जैसे रिजका, बरसीम, चँवला, ग्वार आदि इन फसलों मे प्रोटीन (18–20 प्रतिशत), कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा फास्फोरस की अच्छी मात्रा होती है। इनकी जड़े हवा में उपलब्ध नत्रजन को एकत्रित करती है ताकि भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहे और दूसरी घासकुल की फसलें जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, मकचरी, जई, नेपियर आदि है। इन फसलों में शर्करा अधिक व तन्तुओं से भरपूर होती है तथा प्रोटीन (4–8 प्रतिशत) होती है। पशुओं को संतुलित आहार देने हेतु दोनों तरह की फसलें जो जैविक विधि से उत्पादित की गई हो, का चारा देना चाहिए। हरे चारे में पोषक तत्व मात्रा अधिक होती है, अतः पशुओं को जैविक हरा चारा खिलाना चाहिए एवं वर्ष भर जैविक चारा उत्पादन हेतु ऊपर दिये निम्नलिखित तालिका अनुसार फसल चक्र अपनाया जा सकता है।

3. पेड़ पौधो एवं झाड़ियों से जैविक चारा उत्पादन

जैविक चारागाहों में चारा उत्पादन हेतु खेजड़ी, बबूल, सिरस, अरडू, नीम, पीपल, ककेड़ा, जाल आदि के पेड़ एवं झाड़बेरी, फोग, मुराली, खीप आदि झाड़ियाँ लगानी चाहिए। जिससे पशुओं को उनकी पत्तियों के रूप में जैविक चारा मिलता रहें। पेड़ों एवं झाड़ियों की टहनियों को समय–समय पर काटते रहना चाहिए। जिससे पशुओं को नई ताजा पत्तियों के रूप में पोषक तत्व प्राप्त हो सके। वर्षा ऋतु में नई झाड़ियां एवं पौधों का रोपण करते रहना चाहिए।

4. फसलों के अवशेषों का जैविक चारे के रूप में उपयोग

यद्यपि जैविक पशुपालन में चराई द्वारा पशुओं को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध करवाने पर जोर दिया जाता है लेकिन सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति चराई द्वारा पूर्ण नहीं होने पर जैविक खेती से उत्पादित फसलों के अवशेष काम में लिये जा सकते हैं। इसके लिए जैविक विधि द्वारा उत्पादित गेंहू की फसल से गेंहू की तूड़ी, बाजरे की फसल से बाजरे की कड़बी, चावल की फसल से चावल की पूवाल आदि काम में ले सकते हैं। लेकिन ये सभी फसलें जैविक खेती से ही उत्पादित होनी चाहिए।

5. जैविक विधि से उत्पादित हरे चारे का संरक्षण

जिस प्रकार परंपरागत पशुपालन में हरे चारे का संरक्षण 'हे' एवं साइलेज के रूप में किया जाता है वैसे ही जैविक तरीके से उत्पादित हरे चारे का संरक्षण किया जाता है।

'हे' (सूखा हरा चारा)

'हे' उस सूखे हरे चारे को कहते हैं जिसमें शुष्क पदार्थ लगभग 85–90 प्रतिशत, रंग हरा एवं पत्तियां अधिक मात्रा में हो। नमी की मात्रा 10–15 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी

वर्ष भर जैविक चारा उत्पादन हेतु फसल चक्र

फसल	बीज दर कि.ग्रा./है.	बोने का समय	कतार से कतार की दूरी	सिंचाई	कटाई का समय	पैदावार क्विंटल प्रति हेक्टेयर
ज्वार	40	मार्च एवं जुलाई	25 से 30 सेमी. 5 से 7 सेमी. गहराई पर सीड ड्रिल	10 से 12 दिन के अन्तराल पर गर्मियों में	50 प्रतिशत फूल आने पर (60 से 70 दिनो)	350 से 450
मक्का	40–45	मार्च, अप्रैल, एवं जुलाई	25 से 30 सेमी.	5 से 7 दिन के अन्तराल में	50 प्रतिशत फूल आने पर (70 से 75 दिनो)	400 से 800
बाजरा	10–12	मार्च व जुलाई	30 सेमी.	गर्मियों में 8 से 12 दिन के अन्तराल पर	50 प्रतिशत फूल आने पर (50 से 60 दिनो)	350 से 450
चावल	40–50	मार्च व जुलाई	50–60 सेमी. पौधे से पौधे 10 सेमी.	12 से 15 दिन बाद	50 प्रतिशत फूल आने पर (60 से 90 दिनो)	250 से 350
बरसीम	25–30	अक्टूबर	छिटकवा	14 से 18 दिन के अन्तराल पर	प्रथम 50–60 दिन पर, बाद में 30 से 35 दिन पर (5 कटाई)	500 से 600
रिजका	20–25	अक्टूबर–नवम्बर	छिटकवा	10 से 12 दिन के अन्तराल पर हल्की मिट्टी वाले क्षेत्रो में, 20 से 25 दिन के अन्तराल पर भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में	प्रथम 55 से 60 दिन, बाद मे 30 से 35 दिन पर (8 कटाई)	700 से 800
जई	80–100	अक्टूबर–नवम्बर	20 से 25 सेमी., 5 से 7 समी. गहराई से सीड ड्रिल	3 से 4 सिंचाई 20 से 25 दिन के अन्तराल में	50 प्रतिशत फूल आने पर प्रथम 60 से 70 दिन, अन्य प्रथम कटाई के 50 से 60 दिन	400 से 600
जौ	100	अक्टूबर दिसम्बर मध्य तक	22 सेमी.	6 से 7 सिंचाई 20 से 25 दिन के अन्तराल पर	55 से 60 दिन पर प्रथम, द्वितीय बाली आने पर या दुधिया अवस्था में	200 से 250
मकचरी	40	मार्च एवं जुलाई	30 से 35 सेमी. पौध से पौध 15 से 20 समी.	बरसात की फसल है, मुरझाने लगने पर सिंचाई करें	70 से 90 दिन बाद 50 प्रतिशत फूल आने पर (3 से 5 कटाई)	450 ये 500

चाहिए क्योंकि इससे अधिक होने पर चारा खराब हो जाता है एवं उसमें फफूंदी लगने का खतरा रहता है।

अच्छे 'हे' की विशेषताएं

- एक अच्छे 'हे' में पत्तियों की मात्रा अधिक होनी चाहिए, क्योंकि पत्तियों में प्रोटीन, विटामिन, खनिज तत्व अधिक होते हैं।
- 'हे' बनाने के लिए हरे चारे/घास को उस समय काटना चाहिए जब वह पुष्प अवस्था में हो, क्योकि उसी समय पोषक तत्व अधिकतम होते हैं।
- 'हे' का रंग हरा, मुलायम तथा स्वादिष्ट होना चाहिए।
- नमी की मात्रा 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

- 'हे' में खरपतवार, मिट्टी एवं अनावश्यक पदार्थ नहीं होने चाहिए।

'हे' बनाने हेतु उपयुक्त फसलें

'हे' बनाने के लिए पतले तनें की घासें एवं फसलें उपयुक्त रहती है। क्योंकि इनकों सुखाने में कम वक्त लगता है। जैसें दूब घास, सेवण घास, जई, एम.पी.चरी., ल्यूसर्न, बर्सीम इत्यादि। मोटे तने की फसलों का भी 'हे' बनाया जा सकता है लेकिन उसको सूखने में ज्यादा समय लगता है।

साइलेज बनाने के लिए कुछ आवश्यक निर्देश

- जिस चारे से साइलेज बनाना हो, उसमें शुष्क पदार्थ की मात्रा 35–40 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि नमी अधिक हो, तो इसे सुखा लेना चाहिए और यदि नमी कम हो, तो साइलेज बनाते समय चारे पर पानी छिड़कना चाहिए।
- चारे में यदि नमी बहुत कम है तो वह भली–भांति गड्ढे में दब नहीं पायेगा। इसके फलस्वरूप चारे में अधिक हवा रहने के कारण उसमें सड़न लगने का अन्देशा रहता है। यदि चारे में नमी अधिक है तो खट्टी साइलेज बनकर तैयार होगी।
- अच्छी साइलेज बनाने के लिये यह आवश्यक है कि चारा भली–भांति गड्ढे में दाबना चाहिए। अतः बड़े पौधों को काटकर छोटा कर लेना चाहिए। यदि पत्तियों की साइलेज बनाना ही हो तो उन्हें शाखाओं से तोड़कर अलग कर लेना चाहिए।
- साइलेज बनाने वाले हरे चारे में काफी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट उपलब्ध होनी चाहिए। यदि इनकी कमी हो, तो साइलेज बनाने वाले कुल चारे की मात्रा का दो प्रतिशत शीरा छिड़क कर इस कमी को दूर कर लेना चाहिए, ताकि किण्वन के समय साइलेज को सुरक्षित रखने के लिये काफी अम्ल बन सके।
- साइलेज बनाने वाले चारे के तने काफी ठोस होने चाहिए।

साइलेज बनाने के लिये उपयोगी फसलें

साइलेज बनाने वाले चारे में काफी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तथा नमी होना आवश्यक है। हमारे यहां मक्का एवं ज्वार साइलेज बनाने के लिये सर्वोत्तम चारे हैं। फलीदार फसलों से भी साइलेज बनाई जाती है। परन्तु इनमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होती है, अतः ऊपर से शीरा अथवा खनिज अम्ल छिड़कना पड़ता है। कार्बोहाइड्रेट की कमी पूरा करने से फलीदार फसलों से अच्छी साइलेज बन जाती है। इसके अतिरिक्त बाजरा, लोबिया, पुआस, लूसर्न, बरसीम, जई, घास पात, अगौले इत्यादि हरे चारे से भी साइलेज बनाई जाती है। साइलेज बनाने वाली फसलों को फूलते समय ही काटा जाना चाहिए, क्योंकि इस समय इनमें पोषण तत्व अधिक मात्रा में होते हैं।

ऊँटों पर होने वाले मानवीय अत्याचार या क्रूरता एवं उनका कानूनी निवारण

अमिता रंजन
सहायक आचार्य
राजस्थान पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

परिचय

भारत का संविधान (अनुच्छेद 15 क छः) सम्पूर्ण प्राणी मात्र से या उनके प्रति दया भाव रखे जाने का पक्षधर है। इस संदर्भ में राजस्थान जैसे राज्य में ऊँट का अतिविशिष्ट स्थान है। चिंकारा के अलावा ऊँट को भी 'राजकीय पशु' का दर्जा प्राप्त है। यह राज्य के मरूस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का अभिन्न अंग है। प्राचीन काल से ही इसने विषमतम एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में मानव आबादी के अस्तित्व को बनाये रखने में महती भूमिका अदा की है।

वर्तमान काल में ऊँट संकट में है एवं हाल के वर्षो में विशेषतः राजस्थान प्रदेश में इनकी विभिन्न प्रजातियों के वध प्रयोजन एवं अकाल–अभाव वाले समय में इसे अन्य प्रयोजनों हेतु विभिन्न राज्यों में परिवाहित या निर्यात किये जाने की घटनाएँ हुई हैं एवं लगातार इसकी संख्या में भारी गिरावट दर्ज की गयी है। चिंता योग्य पहलू यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि एवं इन कार्यों में प्रयुक्त होने वाले पशु के रूप में ऊँट राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों की 'रीढ़ की हड्डी' सिद्ध हो चुका है। इसके गोबर का प्रयोग बायोगैस निर्माण में ईंधन व खाद के रूप में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुका है। संक्षेप में यह कहना है कि ऊँटों की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उपयोग एवं योगदान को मद्देनजर रखते हुए इनके संरक्षण व सुरक्षा हेतु गंभीर प्रयासों की जरूरत है।

उपरोक्त शीर्षक इसी विचार को लेकर है कि ऊँटों या अन्य विभिन्न प्रकार के पशुओं पर होने वाले कौन–कौन से क्रूरतापूर्ण कार्य, कानून के दायरे में आते हैं एवं उनका कानूनी समाधान इत्यादि क्या है? इसे प्रश्नावली द्वारा इस प्रकार रेखांकित व स्पष्ट कर सकते हैं यथा–

प्रश्न सं. 1) ऊँटों या अन्य जानवरों पर होने वाले कौन–कौन से क्रूरतापूर्ण कार्य कानून के अन्तर्गत आते हैं?

उत्तर : पशुओं को मानवीय अत्याचारों/क्रूरता से बचाने हेतु सन् 1960 में बनाए गए "प्रिवेंशन टू क्रुएल्टी एनीमल एक्ट" के तहत जो कार्य पशुओं से क्रूरता की श्रेणी में आते हैं उनमें उन्हें पीटना, धक्का देना या किकिंग, अत्यधिक बोझा लादना, अत्यधिक कार्य लेना, पीड़ा पहुंचाना आदि वे सभी कृत्य सम्मिलित हैं, जिनसे पशुओं को अनावश्यक पीड़ा पहुंचती है। वैसे पशु जो बीमार या शारीरिक रूप से अक्षम हैं, उनसे कार्य लेना, कोई खतरनाक दवा या कैमिकल देना, उन्हें तकलीफ देने वाली स्थिति में एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, किसी ऐसे स्थान या पिंजरे में रखना जहां उनको पर्याप्त हवा, जगह या शरीर के अन्य कार्यकलापों या उनके संचालन की जगह न हो, उन्हे क्रूरता की श्रेणी में रखा जाता है। इनके अलावा बहुत भारी जंजीर से बांधना, पर्याप्त भोजन या पानी उपलब्ध न कराना, बीमारी या प्रतिकूल परिस्थितियों में आवारा छोड़ देना या शिकार आदि/मनोरजंक खेलों या अन्य प्रयोजनों हेतु गलत इस्तेमाल भी क्रूरता की श्रेणी में आते हैं।

प्रश्न सं. 2) क्या पशुओं से क्रूर व्यवहार करने पर सजा का प्रावधान कानून में है ?

उत्तरः जी हां, विभिन्न कानूनी प्रावधान, विभिन्न नियम अधिनियम के अन्तर्गत सम्मिलित किए गए हैं। यदि कोई व्यक्ति पशुओं के साथ वैसा व्यवहार या कृत्य करता है जो क्रूरता की श्रेणी में आते हैं, तो उसे सेक्शन ग्यारह "प्रिवेंशन ऑफ क्रुएल्टी एक्ट 1960" के तहत दोषी करार देते हुए 50 रू. तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। यदि वही व्यक्ति दूसरी बार ऐसा करता हुआ पाया जाता है तो उसे 25 से 100 रूपये तक का जुर्माना या तीन महीनें तक की कैद या दोनों सजा दी जा सकती है। यूं देखा जाए तो ये सजायें मामूली हैं एवं काफी कुछ बदलाव लाने की आवश्यकता है। सरकारें भी समय–समय पर इस कानून में

सुधार करती रही है।

यह गौर करने या विचारणीय विषय है कि पशुओं पर होने वाले ज्यादातर अत्याचारों में रिपोर्ट दर्ज करने के बाद पुलिस को उन्हें गिरफ्तारी वांरट के बिना गिरफ्तार करने का अधिकार नहीं है। परन्तु कुछ ऐसे भी अत्याचार हैं जैसे कि पशु को जहर देकर या पीटकर मार देना, पशु का पशु से लड़ाई या शिकार में प्रलोभन की तरह इस्तेमाल, पशु को बंदूक से मार देना या किसी दवा के प्रभाव से अधिक दूध देने को मजबूर करना जो कॉग्निजेबल ऑफेंस की श्रेणी में आते हैं और पुलिस ऐसे कार्यों में लिप्त व्यक्ति को बिना वांरट जारी किए हुए गिरफ्तार कर सकती है।

प्रश्न सं. 3) क्या परिवहन पशु एवं भारवाहक पशुओं की कोई श्रेणी है? ऐसा है तो इन पर विशेषतः ऊँटों पर लादा जाने वाला अधिकतम भार कितना है?

उत्तरः परिवहन पशु एवं भारवाहक पशुओं का नियम "प्रिवेंशन टू क्रुएल्टी टू एनिमल एक्ट 1965" द्वारा संशोधित व सम्मिलित किया गया जिनमें छोटे, मध्यम एवं बड़े आकार के बैल व भैंसे, टट्टू, खच्चर, गधा व ऊँट शामिल हैं। इसे तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

परिवहन हेतु ऊँट की स्थिति में दो पहिए वाले वाहन के साथ वयस्क पशु को 1000 किग्रा वजन वाहित करने को मान्य समझा गया है।

भारवाहक पशुओं पर अधिकतम भार को लादने के लिए भी कुछ विशेष नियम हैं जो कि इस प्रकार हैं–

पशु	भार सीमा (कि. ग्रा.)
छोटा बैल या भैंसा	100
मध्यम आकार के बैल या भैंसा	150
बड़े आकार के बैल या भैंसा	175
टटू	70
खच्चर	200
गधा	50
ऊँट	250

अर्थात् ऊँटों के विषय में यह भार अधिकतम 250 किग्रा है जो वयस्क अवस्था में ही इन पर लादा जा सकता है।

प्रश्न सं. 4) क्या ऊँटों का वध करना अपराध की श्रेणी में आता है एवं ऊँट का मांस बेचना गंभीर मामले हैं अथवा नहीं ?

उत्तरः "प्रिवेंशन ऑफ क्रुयलटी टू एनिमल एक्ट" 1960 के अनुसार ऊँटों के मांस को "भोज्य पदार्थो" की श्रेणी से बाहर रखा गया है। अभी तक गोवंश (कुछेक राज्यों में), बकरी, भेड़ एवं सुअरों का ही वध मान्य है एवं इनके मांस या अन्य उत्पादों को ही भोज्य पदार्थो की श्रेणी में रखा गया है। अभी तक के प्रावधानों में स्पष्टता से यह वर्णित है कि ऊँट का वध एवं उनका मांस बेचना या उसके मांस को मानव भक्षण हेतु उपयुक्त कहना या भक्षण करने को बाध्य करना गंभीर अपराध की श्रेणी में आते हैं।

प्रश्न सं. 5) राजस्थान सरकार द्वारा बनाये गये नियम क्या हैं ? उन पर प्रकाश डालें।

उत्तरः ऊँट राजस्थान का राज्य पशु है एवं लगातार घटती जनसख्या को देखते हुए राजस्थान सरकार ने ऊँटों के वध का प्रतिषेध और निर्यात पर रोक लगाने हेतु 2015 में अधिनियम लाया जो "ऊँटो ं के वध का प्रतिषेध और अस्थायी प्रव्रजन या निर्यात का विनियमन अधिनियम –2015" के नाम से उल्लिखित हैं।

इस अधिनियम के अनुसार ऊँट का वध किसी भी विधि, किसी भी प्रथा या रूढ़िवादी परंपरा या किसी भी अन्य परिस्थिति में वैध या मान्य नहीं होगा।

इस अधिनियम के अनुसार ऊँट का मांस और मांस के अन्य उत्पादों के कब्जे, विक्रय या परिवहन का प्रतिषेध किया गया है।

ऊँट का किसी भी प्रयोजन हेतु इसके निर्यात एवं अस्थायी प्रव्रजन निर्यात को निषेधित किया गया है।

प्रश्न सं. 6) इस अधिनियम में उपधाराएं कितनी है तथा दण्ड का क्या–क्या प्रावधान है?

उत्तरः उपरोक्त अधिनियम 2015 के अनुसार इस अधिनियम की कई उपधाराएँ हैं जिनमें यह उल्लेखित है कि राजस्थान के दुर्भिक्ष और अभाव ग्रस्त क्षेत्रों से ऊँटों को चराने हेतु अन्य राज्यों में अस्थायी प्रव्रजन सक्षम अधिकारी द्वारा अनुज्ञात किया जा सकता है। इनमें ऊँटों की संख्या, उस राज्य का नाम, कालावधि इत्यादि का वर्णन करते हुए आवेदन करना होगा। इसके लिए ऊँटों पर पहचान चिन्ह लगाने का उल्लेख एवं ऊँटों की वापसी पर उपरोक्त सभी कार्यों का उल्लेख, उसी सक्षम अधिकारी के पास करना होगा। इसकी पूर्णरूपेण पालना सुनिश्चित कि जानी मान्य होगी।

यदि किसी भी सूरत में ऊँटों की संख्या कमतर ज्ञात हो तो उसे दोषी समझा जाएगा एवं दण्डित किया जाएगा। विभिन्न उपबंधों के अधीन भिन्न–भिन्न दण्डों का प्रावधान सन्निहित किया गया है यथा–

यदि कोई व्यक्ति किसी ऊँट को शारीरिक पीडा रोग या अंग शैथिल्य या उपहित कारित करता हो तो दोष सिद्ध होने पर 3000 रू. का दण्ड एवं दो वर्षो की कठोर सजा का प्रावधान है।

यदि किसी ऊँट को गंभीर क्षति पहुँचाई जाए तो दोष सिद्ध होने पर कम से कम एक साथ, अधिकतम 3 साल तथा 7000/– जुर्माने का विधान स्पष्ट निहित है। यहां गंभीर क्षति का तात्पर्य अंगों के जोड़ को हटाना, दांत, हड्डी का भंग होना, आंखों की स्थायी क्षति इत्यादि से है जो पुनः वैसी स्थिति में कर पाना मुमकिन न हो, ऐसा उल्लेख है।

अन्य बात जो गौर करने योग्य है कि निर्यात, हत्या या वध, मांस बेचने इत्यादि हेतु दोषी को कठोर सजा (1–5 वर्ष) तथा 20,000/– जुर्माना एवं कमतर दोषी होने की अवस्था में 6 महीनें से 3 साल तथा 5,000 जुर्माना का प्रावधान है।

प्रश्न सं. 7) यदि परिस्थितियाँ ऊँटों के लिए काफी विषम हो तो इनसे बचने हेतु क्या प्रावधान है? क्या इच्छा मृत्यु (पीड़ा रहित) उन्हें दी जा सकती है, यदि हां तो कैसे?

उत्तरः प्रिवेंशन ऑफ क्रुएलिटी टू एनिमल एक्ट 1960 (नं. –59) के अन्तर्गत एनिमल वैलफेयर बोर्ड का निर्माण 1962 में भारत की सरकार द्वारा किया गया एवं इसमें असाध्य रोग, या घाव तथा असीम दुर्बलता की अवस्था से गुजरते हुए पशुओं को "पीड़ा रहित ऐच्छिक मृत्यु" का प्रावधान किया गया जिसे यूथेनेशिया कहा जाता है। इसमें स्थायी असहनीय पीड़ा से ग्रसित पशुओं को मानवीय एवं प्रभावी परन्तु पीड़ा रहित मृत्यु देने का प्रावधान किया गया है। यह तभी दी जानी चाहिए जब संबंधित पशु का भविष्य इन 5 प्रकार की स्वतंत्रताओं को पहचानने से बाधित हो जाए यथा–

1. भूख एवं प्यास से स्वंतत्रता
2. पीड़ा से राहत की स्वतंत्रता
3. पीड़ा/दर्द को पहचानने की स्वतंत्रता
4. अपनी सामान्य जीवन जीने की शैली या आदतों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता
5. डर या खौफ से स्वंतत्र रहते हुए जीने की जिजीविषा की स्वंतत्रता

पीड़ा रहित इच्छा मृत्यु की स्थिति में बेहोश करने से लेकर हृदय एवं श्वसन संबंधित कार्यो को खत्म करने की क्षमता को नष्ट करना शामिल है एवं संबंधित पशु चिकित्सक द्वारा उसे मृत घोषित करना अनिवार्य है।

यूँ तो कई प्रकार की दवाइयों या तरीकों को यूथेनेशिया में अपनाने का प्रावधान है परन्तु यूथेनेशिया के पहले प्री यूथेनेशिया दवाओं को उपयोग में लाकर पशुओं को उनीदीं अवस्था में करने तथा फिर मुख्य दवा का यूथेनेसिक एजेन्ट की तरह उपयोग करने का प्रावधान है।

यहाँ ऊँटों की चर्चा है तो ऊँटों एवं हाथियों पर "जाइलाजीन एवं किटामीन" एवं साथ–साथ पोटेशियम क्लोराइड 10 प्रतिशत आई. वी. लगाकर उन्हें जड़वत स्थिति में लाना अनिवार्य है। जहाँ तक इनकी खुराकों का प्रश्न है तो– जाइलाजीन 0.5 मिग्रा प्रति किग्रा भार के अनुसार मांसपेशी में, व किटामीन हाइड्रोक्लोराइड तथा जाइलाजीन एक साथ देने की स्थिति में 1 से 2 मिग्रा प्रति किलोग्राम भार के अनुसार मांस में लगाना ज्ञापित है।

प्रमुख दवाओं में जो यूथेनेशिया हेतु प्रयुक्त होते हैं, उनमें ऊँटों पर इटार्फिन दवा का प्रयोग 0.25 से 0.5 मिग्रा प्रति 45 किग्रा भार मांस में लगाना अपेक्षित है। इसके द्वारा इन्हें पीड़ा रहित इच्छा मृत्यु दी जा सकती है।

प्रश्न सं. 8) क्या ऊँट का उपयोग प्रायोगिक कार्यो हेतु लिया जा सकता है? यदि हां तो किन जरूरी बातों का ध्यान रखना होगा?

उत्तरः प्रिवेशंन टू क्रुएल्टी टू एनीमलस् एक्ट में 1968 में विभिन्न पशुओं पर प्रायोगिक कार्यों के लिए "कंट्रोल एवं सुपरविजन नियम" बनाया गया है, पुनः 2011 में "एनीमल वेलफेयर एक्ट द्वारा इनमें कुछ अधिसूचियाँ जोड़ी गई, जिसके अनुसार पशुओं पर प्रयोगों को तभी मान्य समझा जायेगा, जब इसके द्वारा प्राप्त परिणामों के द्वारा "मानव जाति या अन्य पशुओं के जीवन एवं रोगों से रक्षा" हो सकेगी या इन कार्यों में मदद की गुंजाइश होगी। इसके लिए बड़े पशु, छोटे पशु एवं प्रायोगिक कार्यशाला हेतु

उपयुक्त पशुओं के लिए अलग–अलग नियम बनाये गए हैं। ऊँटों को बड़े पशुओं की श्रेणी में रखा गया है। इन पर प्रायोगिक कार्यों के सम्पादन हेतु इंस्टिटयूट एवं केन्द्र के स्तर पर सक्षम अधिकारियों से लिखित अनुमति प्राप्त करनी होती है। केन्द्र स्तर पर पशुओं पर परीक्षण के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के प्रयोजनार्थ समिति है, जो पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मत्रांलय, भारत सरकार द्वारा संचालित की जाती है तथा संस्था के स्तर पर'' संस्थागत एनीमल एथिक्स कमेटी' का गठन किया गया है जो पशुओं पर होने वाले प्रयोगों की निगरानी करेगी। इनमें मुख्य बातें हैं:–

1. विशेष देखभाल एवं मानवीय तरीकों का उपयोग कर प्रयोग को सम्पादित करना।
2. कम से कमतर संख्या में पशुओं पर प्रयोग करना।
3. बेहोशी की दवा की जरूरत यदि आ जाए तो उस पर कुशलता पूर्वक उपयोग करते हुए प्रयोगों का निष्पादन करना।
4. पीड़ा का कम से कम भान हो, ऐसा सुनिश्चित करना।
5. कुरारी नामक पदार्थ जो पारालिसिस करने की क्षमता रखता है एवं गहरी बेहोशी की अवस्था लाता है– उसका उपयोग करना वर्जित माना गया है। इत्यादि।

प्रश्न सं. 9) आजकल ऊँटनी के दूध की महत्ता पर चर्चाएँ हैं, ऐसे में यह बताये कि क्या अन्य दुधारू पशुओं की तरह ऊँटनी द्वारा ऑक्सीटॉक्सीन इंजेक्शन का इस्तेमाल कर दूध प्राप्त करना कानूनन जुर्म है?

उत्तरः यह अत्यन्त रोचक प्रश्न है। अभी पिछले कुछेक वर्षो में ऊँटनी के दूध पर शोध हुए हैं एवं सुखद परिणाम भी लक्षित हुए हैं। हालाँकि ऊँटनी को दुधारू पशुओं की श्रेणी में नहीं रखा गया है एवं इस विशेष प्राणी के लिए स्पष्ट कानूनी प्रावधानों का अभाव है। परन्तु जैसा कि अन्य दुधारू पशुओं में यह स्पष्ट है कि ऑक्सीटोसीन के इन्जेक्शन द्वारा दूध प्राप्त करने पर व्यक्ति यदि दोषी सिद्ध हो जाये तो जुर्माने के तौर पर 1000 रू. या अधिकतम 2 साल की सजा या दोनों का हकदार होगा। यहां तक कि जो दुकानदार बिना लाइसेंस के उपरोक्त दवा को अपनी दुकान पर रखता है एवं बिक्री करता है तो अधिकतम 5 साल सजा का हकदार होगा। ऊँटनी पर स्पष्ट कानून इस दिशा में बनाने का विधान सुनिश्चित कराना सरकार का दायित्व है।

निष्कर्ष

यह कहना कि कानूनों का अभाव है, ऐसा नहीं है परन्तु कानूनों की पालना सुनिश्चित हो, ऐसा जरूरी है। मनुष्य मानवता की दृष्टि से सभी प्राणियों से व्यवहार करें, यह भी विचारणीय दायित्व है।

आवारा गोवंश - कारण एवं निदान

वेद प्रकाश[1], शालिनी सुथार[2], गजानंद[3] एवं बसंती ज्योत्सना[4]
[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, [3]पर्यवेक्षक, [4]वैज्ञानिक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

आवारा गोवंश क्या है?

आम बोल चाल की भाषा में आवारा गोवंश की श्रेणी में वैसे परित्यक्त गाय, बैल आते हैं, जिन्हें पशुपालक द्वारा बोझ माना जाता है। बिना किसी आर्थिक लाभ के, इन्हें खिलाना–पिलाना और देखभाल करना पड़ता है, क्योंकि ये दूध का उत्पादन नहीं करते हैं और इनका किसी भी कृषि कार्य या खाद उत्पादन जैसे कार्यो में उपयोग भी नहीं हो सकता है। इसके अलावा शहरों में या शहरवासियों के द्वारा पाली जाने वाली कुछ कम उत्पादक गायें जिनकों दिन में खुला छोड़ दिया जाता है, उन्हें भी आवारा गोवंश की श्रेणी में रखा जा सकता है। बढ़ते हुए मशीनीकरण ने भारवाहन एवं कृषि कार्यों में नर गोवंश की उपयोगिता को निरर्थक बना दिया है। इसके अलावा गोहत्या पर प्रतिबंध को लेकर देश में हुए घटनाक्रम से भी नर गोवंश की संख्या में वृद्धि हुई है। सामान्यतः आवारा गोवंश यातायात में बाधा डालते हैं। ये खड़ी फसल को खराब करते हैं जो किसान के लिए बड़ी समस्या है। सड़कों और खुले क्षेत्रों से आवारा गोवंश को सीधे गोशालाओं में ले जाने की आवारा पशुओं की प्रबंधन विधि पर्याप्त नहीं है। गौशालायें आवारा पशुओं के पुनर्वसन का उत्तम विकल्प है लेकिन आवारा पशुओं की वृद्धि ने गौशालाओं और चारा संसाधनों पर और ज्यादा दबाव बढ़ा दिया है। गौशाला की संख्या बढ़ाने और राष्ट्रीय गोकुल मिशन के तहत गौशालाओं के आर्थिक समर्थन को बढ़ाकर भी सड़कों से आवारा पशुओं को पूरी तरह से हटाना संभव नहीं है। जिन कारणों से आवारा पशुओं की तादाद बढ़ रही है, उसके आकलन से कमियों और संभावित उपायों का पता चल सकता है। आवारा पशुओं के प्रबंधन के लिए दो तरह की रणनीति की आवश्यकता है:

1. पशुओं को आवारा बनने से रोकना तथा उसकी संख्या कम करना ।
2. गोवंश की उपयोगिता को बढ़ाकर आय में वृद्धि। पशुपालकों की गोवंश से आय में वृद्धि चाहे गोबर, गोमूत्र, कृषि कार्य या इनके उच्च गुणवता वाले चिकित्सीय दूध की ब्रिक्री से हो।

आवारा गोवंश कैसे पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और एक आवारा गोवंश को किस तरह से उपयोग में लाया जा सकता है, यह समझने के लिए पता लगाना जरूरी है कि गोवंश के चार श्रेणी में से कौन–सी श्रेणी के गोवंश के आवारा पशु बनने की संभावना अधिक होती है।

शहरी क्षेत्र में आवारा गोवंश

गोवंश का वर्गीकरण एवं आवारा गोवंश बनने का संबंध

देश की कुल 19 करोड़ गोवंश की जनसंख्या को उपयोगिता, नस्ल की शुद्धता, उत्पत्ति इत्यादि के आधार पर चार वर्गो में बांटा जा सकता है:

श्रेणी-1 : (परिभाषित/वर्णित गोवंश नस्ल)

इस श्रेणी में परिभाषित/वर्णित गोवंश नस्ल आते हैं। यह कुल गोवंश आबादी का लगभग 20 प्रतिशत है। ये स्थानीय वातावरण में अच्छी तरह से अनुकुलित तथा गुणवत्तापूर्ण दूध के प्रमुख उत्पादक हैं। इसलिए यह श्रेणी

बहुत मूल्यवान है। फलतः इसमें से अधिकांश की ऊँची मांग है। इनका उपयोग नस्ल सुधार के लिए भी किया जाता है। देश में कुल 43 परिभाषित गोवंश नस्ले हैं जिनमें गीर, साहिवाल, रेड सिंधी, थारपारकर इत्यादि काफी प्रचलित है। सभी परिभाषित नस्लें देश के लिए एक अत्यंत मूल्यवान संपति है। क्योंकि प्रत्येक नस्ल किसी क्षेत्र विशेष के लिए अनुकूलित है और प्रत्येक का एक विशिष्ट जीन संयोजन है। संसाधनों की कमी और सीमितताओं के बावजूद ये जीवित रहने में सक्षम हैं तथा पशुमालिकों के लिए ये पर्याप्त उत्पादन करते हैं। इसलिए पशुपालक इनकी पर्याप्त देखभाल करते हैं। जिसके कारण इस समूह से संबधित गोवंश सड़कों पर नहीं आते हैं और आवारा (श्रेणी में) नहीं बनते हैं।

भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर

श्रेणी-2 (अवर्णित नस्लें लेकिन एकरूपता तथा विशिष्ट गुण वाले)

इस श्रेणी के गोवंश एक रूप के होते हैं लेकिन इन्हें देश में अभी तक नस्ल की मान्यता नहीं मिली है या एक नस्ल के रूप में पंजीकृत नहीं किया गया है। यह कुल गोवंश आबादी का लगभग 10 प्रतिशत है। दरअसल इस समूह के पशुओं की उत्पादकता में कोई कमी नहीं है लेकिन राज्य की एजेंसियाँ अभी तक इनका सर्वेक्षण या पंजीकरण नहीं कर पाई है। उचित दस्तावेज के अभाव तथा इस समूह पर उचित ध्यान की कमी के रहते इनकी जनसंख्या अपनी एकरूपता खो रही है तथा इनकी उत्पादकता में भी कमी आ रही है। हालांकि इस श्रेणी के पशुओं को स्थानीय स्तर पर मान्यता है तथा किसानों द्वारा खेती और दैनिक कार्यो को पूरा करने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। ये पशु अब अन्य नस्लों/आबादी के साथ घुलमिल रहे हैं और अपने विशेष गुणों को खोते जा रहे हैं। इस वर्ग के उदाहरण नारी, आलमवादी,साचौंरी, जल्लीकटु, कसारगोड, मणिपूरी, पूर्णिया, शाहाबादी, तराई, थो–थो, जाओंग इत्यादि हैं। इनके पंजीकरण और सुधार के लिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इस समूह के कम उत्पादक जानवर तेजी से आवारा पशु बन रहे हैं।

एकरूपता तथा विशिष्ट गुणवाले गोवंश

श्रेणी-3 (संकर नस्ल)

इस श्रेणी में संकर गोवंश आते हैं जिनकी आबादी वर्तमान में देश की कुल गोवंश का लगभग 21 प्रतिशत है। जर्सी और होल्स्टीन फ्रिजियन जैसी विदेशी नस्लों के साथ भारतीय नस्लों का संकर प्रजनन लगभग 60 साल पहले इस उम्मीद के साथ शुरू हुआ था कि देश में दूध की पैदावार बढ़ेगी। दूध की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि भी हुई है, लेकिंन क्रॉसब्रीड भारतीय परिवेश की कठोर जलवायु परिस्थितियों के अनुकुल नहीं है और अच्छी तरह से जीवित रहने में सक्षम नहीं हैं। दूध की पैदावार में शुरूआती वृद्धि हुई थी, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में उत्पादन में वृद्धि नहीं हो सकी हैं। क्रॉसब्रीड़ का जीवनकाल संकर प्रजनन में उपयोग में लाई गई मूल स्वदेशी नस्लों की तुलना में बहुत कम है। स्वदेशी नस्लों की औसत जीवनकाल ब्यांत संख्या (9 से 10) की तुलना में संकर नस्लों की ब्यात की संख्या औसतन सिर्फ (3 से 4) दर्ज की गई है। संकर नस्ल के सांडों में बाँझपन की भी समस्या काफी पाई गई है। दूसरी

या तीसरी ब्यांत के बाद संकर गायों का एक बड़ा प्रतिशत कभी भी गर्भधारण नहीं कर पाता है। ऐसी गायें सड़कों पर आ जाती हैं और कई को तो गौशालाओं में डाला जाता है। गौशालाओं में भी क्रॉसब्रीड का प्रजनन दर तथा उत्तरजीविता स्थानीय नस्लों से कम दर्ज की गई है। 80 और 90 के दशक के दौरान आनुवांशिक रूप से स्थानीय गायों को सुधारने के लिए कम ध्यान दिया गया। पूरा ध्यान संकर नस्ल के विकास की तरफ था। कोई भी विकसित संकर प्रजाति पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी उत्पादकता को बनाये नहीं रख सकीं। पूरे संस्थागत समर्थन के बावजूद भी देश में संकर प्रजाति जैसे कि करन स्विस, करन फ्रीज या सुनंदिनी इत्यादि समय की कसौटी पर विफल रहे। इस संकर जनकीय समूह के कम उत्पादन वाले जानवरों को किसानों के द्वारा छोड़ दिया गया। जानवर या तो गौशाला में या सड़कों पर आवारा पशुओं के रूप में परिवर्तित हो गये। सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में संकर नस्ल लगभग हमेशा आवारा गोवंश समूह में प्रवेश करते हैं।

श्रेणी-4 (अवर्णित नस्लें/गोवंश)

देश के गोवंश की आधी आबादी को अब तक वर्णित/परिभाषित नहीं किया गया है। क्योंकि ये मिश्रित गुण के जानवर हैं, न किसी नस्ल के समान है तथा इनकी

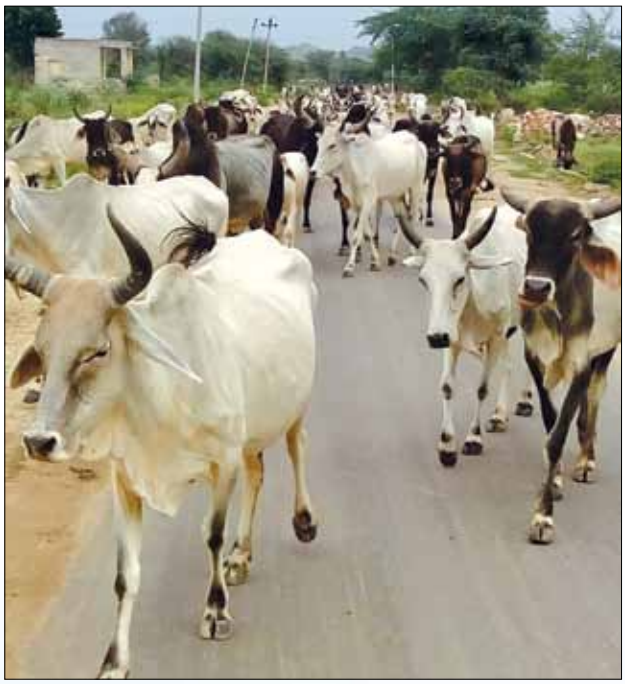

अवर्णित नस्लें/गोवंश

उत्पादकता भी काफी कम है। इस श्रेणी के गोवंश किसी श्रेणी में विभक्त नहीं किये गये हैं या किसी श्रेणी से संबद्धित नहीं है और इसलिए इन्हे गैर वर्णित गोवंश कहा जाता है। उनकी उत्पादकता को केवल दुग्ध से मापा जाता है जो प्रायः एक या दो लीटर होती है। इनसे प्राप्त अन्य उत्पाद जैसे दूध, भारवहन शक्ति या फिर गोबर या गोमूत्र की उपयोगिता का कोई उचित मूल्य नही दिया जाता है। जिससे इस समूह के पशुओं का सही आर्थिक मूल्यांकन नहीं हो पाया है। स्थानीय रूप से देशी गोवंश भारवाहक जानवरों के रूप में पूरे देश में उपयोग में लिया जाता है। मशीनीकरण ने पशुओं के कृषि कार्यो में तथा भारवाहन के उपयोग को सीमित कर दिया है। दूरदराज और पहाड़ी क्षेत्रों में देशी गोवंश भारवाहक पशु शक्ति के रूप में उपयोग में लाया जाता है और स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करती है। केन्द्रीय कृषि इंजीनियरिंग संस्थान, भोपाल के अनुसार देश में कृषि कार्यों का लगभग 43 प्रतिशत हिस्सा और आधा ग्रामीण परिवहन पशु शक्ति के द्वारा किया जाता है। कृषि कार्यो में नियोजित की जा सकने की तुलना में अधिक नर गोवंश पैदा होते हैं। जरूरत से अधिक अधिशेष बछड़ों और वयस्क पशु को छोड़ दिया जाता है और ये आवारा गोवंश बन जाते हैं।

आवारा गोवंश प्रबंधन की कार्य योजना

आवारा पशु वर्तमान में देश की एक बड़ी समस्या है तथा मौजूदा परिस्थितियों में यह और बड़ी समस्या के रूप में उभरी है। तकनीकी सहायता व दो स्तरीय रणनीति गोवंश को आवारा बनने से बचायेगी। एक रास्ता गोवंश का आनुवांशिक सुधार है, जबकि दूसरा इनसे प्राप्त उत्पादों का मूल्य संवर्धन तथा उपयोगिता को बढ़ाना है। ऊपर वर्णित (परिभाषित नस्ल) और (समान रूप के गोवंश जनसंख्या) के जानवर लाभकारी है। इसमें से सिर्फ बहुत कम उत्पादकता वाले पशु ही आवारा पशु बनते हैं। श्रेणी एक तथा दो कृषि क्षेत्र में अपने उत्पादकता और योगदान के आधार पर आवारा श्रेणी में प्रवेश नहीं करते हैं। यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि श्रेणी एक के भारतीय देशी गाय कई मापदण्डों में संकर प्रजाति से बेहतर हैं चाहे गुणवत्ता वाले ए–2 दूध का उत्पादन हो या भारतीय परिस्थितियों में कम चारा/खाद्य व्यवस्था, पानी की कमी, तापमान की अधिकता के लिए बेहतर अनुकूलनशीलता या

गुणवत्ता वाले गोबर या गौमूत्र। गोबर में स्वस्थ मिट्टी के लिए लाभकारी बैक्टीरिया की संख्या अधिक होती है और इनके गुणवत्ता वाला गौमूत्र का पंचगव्य चिकित्सा में और साथ ही रासायनिक कीटनाशकों के अनावश्यक उपयोग को रोकने के लिए जैव कीटनाशकों के रूप में संभव है। ए–2 दूध सुरक्षित दूध का विकल्प है इसकी उपलब्धता देशी पशुओं की नस्लों की संख्या तथा उत्पादकता को बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है। व्यक्तिगत या छोटे संगठन स्तर पर या कुछ गैर–सरकारी संगठनों द्वारा देशी गोवंश के उपयोग के बारे में जागरूकता बढ़ाने से स्वदेशी नस्लों को आवारा होने से बचाया जा रहा है।

बड़े पैमाने पर श्रेणी–3 और श्रेणी–4 के गोवंश आवारा गोवंश बन जाते हैं और सड़कों पर या खेतों में घुमते हैं और अपने भोजन के लिए संघर्ष करते हैं। अतः इन गोवंश श्रेणी के जानवरों के लिए जरूरी कार्य योजना की आवश्यकता हैं। इनके आनुवांशिक सुधार के लिए ज्यादा आर्थिक सहयोग, साथ ही नस्ल संस्था गठन करने की जरूरत है।

श्रेणी-3 (संकर प्रजाति)

विषम परिस्थिति से बचने में असमर्थ होने के अलावा, बांझपन की समस्या के कारण आवारा श्रेणी में प्रवेश करते हैं। केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, मेरठ में विकसित फ्रीजवाल गोवंश के सांडों में प्रजनन क्षमता की कमी दर्ज की गई है। बार–बार प्रजनन (रीपीट ब्रीडींग) संकर गोवंश प्रजातियों में बहुत ही आम समस्या है। एक या दो ब्याँत के बाद क्रॉसब्रीड गायों को छोड़ दिया जाता है और ये सड़कों पर आ जाती हैं। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान में ब्यात की औसत संख्या क्रॉसब्रीड गायों में 3 से 4 दर्ज की गई है। जाहिर है कि दूसरे दुग्धकाल के पूरा होने से पहले ही बड़ी संख्या में गायों को हटाना पड़ता है। इसकी तुलना में देशी नस्लों में औसत ब्यांत संख्या 6–7 दर्ज की गई है। इससे यह स्पष्ट है कि संकर गाय अपने जीवनकाल में अधिक समय तक सड़कों पर आवारा पशु के रूप में भटकती रहती है। इनमें से कई गौशालाओं में पहुंचते हैं और अल्प चारा संसाधनों पर दवाब बन जाता हैं। इसलिए आवारा पशुओं को कम करने का एक महत्वपूर्ण तरीका क्रॉसब्रीड की संख्या को कम करना होगा। पशु चिकित्सा केन्द्रों तथा कृत्रिम गर्भधान केन्द्रों में देसी नस्लों के वीर्य या सांड की उपलब्धता कराके इसकी संख्या कम की जा सकती है। हाल में पंजाब और देश के अन्य हिस्सों से देसी नस्ल के पालकों द्वारा स्थानीय या समान नस्ल के वीर्य से गर्भाधान की मांग में वृद्धि हुई है। देश की उष्ण कटिबंधिय परिस्थितियों में संकर गोवंश का कोई सार्थक भविष्य नहीं दिखता है। उन्हें आवारा होने से बचाने के लिए, अनुत्पादक और विषम रूप से अनुकूलित क्रॉसब्रीड की संख्या को कम करने के लिए एक वकैल्पिक तरीका है–रिवर्स क्रॉसब्रीडींग। देश में लगभग आधी क्रॉसब्रीड जो कि उत्पादन करने में सक्षम है, किसानों द्वारा रख ली जाती है। बाकी गौशाला में या सड़कों पर चली जाती है। आवारा क्रॉसब्रीड गायों का सबसे अच्छा उपयोग भ्रूण स्थानांतरण तकनीक के माध्यम से शुद्ध देशी गायों के उत्पादन के लिए पालक माताओं के रूप में उपयोग करना होगा। देसी नस्लो के भ्रूण के विकास हेतु संकर गोवंश का पालक माताओं के रूप में उपयोग बड़े पैमाने पर आवारा गोवंश को कम कर देंगे।

श्रेणी-4

जैसा कि बाँझपन श्रेणी–3 के गोवंश के आवारा होने का प्रमुख कारण है। श्रेणी–4 के पशु का कारण उनकी अनदेखी करना है। इस समूह को विशेष रूप से पिछले सात दशकों के दौरान सुधार के लिए वैज्ञानिक और संस्थागत समर्थन प्राप्त नही हुआ हैं। चूंकि हमने सारा ध्यान क्रॉसब्रीड को दिया। विश्वविद्यालयों और संस्थानों में शोध मुख्यतः क्रॉसब्रीड के आसपास केन्द्रित थे। जो निरर्थक साबित हुए क्योंकि भारतीय परिवेश में खासकर सीमांत क्षेत्रों में क्रॉसब्रीड शायद ही कभी सफल हुए। क्रॉसब्रीड देश के छोटे और सीमांत किसानों के लिए अच्छी तरह से उपयुक्त साबित नहीं हुई तथा स्थानीय नस्लों पर ध्यान की कमी ने स्थायी नस्लों को दोयम दर्जे का पशु बना दिया। गिर या थारपारकर जैसी प्रसिद्ध नस्लें ही अपनी उपस्थिति बनाए रख सकीं। अपरिभाषित स्थानीय गोवंश सड़कों पर आ गई। अगर स्थानीय नस्लों के सुधार करने पर ध्यान दिया जाए तो इन्हें आवारा पशु समूह में प्रवेश करने से बचाने के साथ–साथ पशु दूध की पैदावार तथा गुणवत्ता में अधिक योगदान दे सकती है। हाल ही में यह सिद्ध हुआ है कि स्थानीय नस्लों पर उचित ध्यान देने से उनकी उत्पादकता बढ़ सकती है। गुजरात में कांकरेज नस्ल अब एक मानक दुग्ध काल में औसतन 3520 लीटर

गोशाला में गोवंश का प्रबंधन

दूध का उत्पादन कर रही है। कांकरेज सामान्य रूप से एक दुधारू नस्ल नहीं है फिर भी 3500 लीटर से अधिक दुग्ध उत्पादकता इसकी क्षमता को दर्शाती है। अब स्थानीय नस्लों को सुधारने पर कुछ ध्यान दिया जा रहा है। जिसके परिणाम सामने आ रहे हैं। यह कई गोवंश को आवारा बनने से बचाएगा, महाराष्ट्र में भी खीलार नस्ल का उपयोग बड़े पैमाने पर भारवाहक/कृषि कार्य उपयोगी पशु के रूप में किया जाता है और एक दोहरी उपयोगिता वाली नस्ल के रूप में जाना जाता है। हाल ही में उच्चतम दूध उत्पादन 12 लीटर तथा एक दुग्धकाल में 1800 लीटर का उत्पादन दर्ज की गई है। अन्य स्थानीय नस्लों के लिए भी इस तरह का ध्यान इन्हें आवारा श्रेणी में जाने से बचाएगा।

आवारा गोवंश से प्राप्त गोबर, मूत्र भी अगर सही तरीके से उपयोग में लिया जाये तो जैविक व प्राकृतिक खेती में मदद करेगा। सभी गोवंश के उत्पादों का हितकारी उपयोग इन्हें आवारा गोवंश बनने से बचाएंगे। आवश्यकता अनुसार तथा वांछित लिंग के बछड़ों का उत्पादन करने के लिए लिंग आधारित सीमेन सेक्सिंग की तकनीकी को विकसित करने की जरूरत है। श्रेणी–4 (अवर्णित नस्लें/गोवंश) के कई जानवरों को खुले में छोड़ दिया जाता है और वे आवारा गोवंश बन जाते हैं। सरकार को गोवंश आधारित उद्योग के लिए पर्याप्त सब्सिडी देनी चाहिए। आज जैविक खेती के फायदों को लोगों ने समझा है और रासायनिक खेती के दुष्परिणामों को दूर करने के लिए गोवंश आधारित खेती पर जोर देने की जरूरत है। इसके लिए उचित प्रोत्साहन नीति बनाने की आवश्यकता है।

गोवंश से प्राप्त उत्पादों के उपयोग का आयुर्वेद, भारतीय धर्म ग्रंथों, पुरानी चिकित्सा पद्धति तथा कृषि में प्रचुर वर्णन मिलता है। इसकी वैज्ञानिक प्रामाणिकता के अध्ययन के लिए गहन अनुसंधान की जरूरत है। देशी गोवंश पर अनुसंधान के लिए नये सेंटर या नये डिपार्टमेंट बनाने की जरूरत है जो केन्द्रित होकर इस क्षेत्र में काम करें तथा उनके गुणों के वैज्ञानिक आधार को उजागर करें। जिससे इन उत्पादों के उपभोग में लोगों का विश्वास बढ़ें। किसी भी पशु समूह के पालन के पीछे उससे प्राप्त आर्थिक लाभ सबसे महत्वपूर्ण होता है। यह गोवंश के लिए भी सार्थक होगा अगर इसकी उत्पादकता तथा उसके उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ेगी।

आज बाजार में दूध की कीमत सिर्फ वसा की मात्रा के आधार पर निर्धारित होती है। इसमें भी बदलाव की जरूरत है। वसा के प्रकार एवं गुणवत्ता, दूध से प्राप्त होने वाले अन्य उपयोगी तत्वों के आधार पर भी कीमत का निर्धारण किया जाना चाहिए। इससे देशी गोवंश से प्राप्त उत्पाद की कीमत बढ़ेगी और लोग गोवंश के पालन में रूचि लेंगे।

गोवंश के उत्पादों का मूल्य संवर्धन तथा उसमें मौजूद गुणकारी तत्वों का शोध इनकी उपयोगिता को और बढ़ा सकता हैं। जो श्रेणी एक या दो की जनसंख्या के बढ़ाने में मदद कर सकता हैं। इसके अलावा श्रेणी–2 की जनसंख्या का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए तथा इनकी अनूठी विशेषताओं को उजागर कर इन्हें नई नस्लों के रूप में पंजीकृत किया जाना चाहिए तथा इनके आनुवांशिक सुधार के लिए एक संरचनात्मक ढाँचा तैयार किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमुख स्थानीय नस्लों के चिकित्सा संबंधी दूध व उत्पादों की गुणवत्ता की उपयोगिता को आंकने के लिए तकनीकी हस्तक्षेप की जरूरत है। एक प्रयोग में मनुष्यों में मधुमेह के जोखिम को कम करने के लिए गिर गाय के दूध से बनी दही के प्रभाव का आकलन किया गया। यह पूर्वकाल के साक्ष्यों के आधार पर अनुमान लगाया

गया था कि गिर नस्ल की दही इंसुलिन के उत्पादन में अग्नाशयी कोशिकाओं को उत्तेजित कर सकती हैं। स्थानीय नस्लों के गुणों के उचित तकनीकी वर्गीकरण से उनके उत्पादों का मूल्य संवर्धन होगा। इनके पालने से किसानों को ज्यादा लाभ होगा और इस तरह इन जानवरों को पालते रहेंगें।

अपरिभाषित गोवंश या तथाकथित अवर्णित गोवंश (श्रेणी–4) की आबादी 49 प्रतिशत है। इन जानवरों के समूह के लगभग आधे पशु कृषि कार्यों में उपयोग किये जाते हैं और आवारा पशु की श्रेणी में नहीं आते हैं। केवल इनके अनुत्पादक तथा अतिरिक्त नरों को किसानों द्वारा छोड़ दिया जाता है। भारवाहक, कृषि उपयोगी जानवरों के महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद देश के पास इन जानवरों के सुधार या जानवरों का कृषि कार्यो हेतु उचित उपयोग करने संबधित सुधारों के लिए कोई नीति नहीं हैं। भारवाहक कृषि उपयोगी जानवर पूर्वी भारत तथा पहाड़ी क्षेत्रों में बहुत उपयोगी हैं। अन्य क्षेत्रों में भी भारवाहक जानवरों का उपयोग कृषि कार्यों के लिए और कृषि उपज के ग्रामीण परिवहन के लिए लघु एवं सीमांत किसानों द्वारा उपयोग किया जाता है जैसे कि गन्ने की फसल को खेतों से गन्ना मील तक ले जाने हेतु, कृषि ऊपज को कृषि मंडी तक ले जाने हेतु, तुड़ी चारा इत्यादि को खलिहान से घर या क्षेत्रीय बाजार में ले जाने हेतु। इस समूह के सुधार के लिए तकनीकी हस्तक्षेप में स्थानीय प्रजाति की पहचान, तुलनात्मक मूल्याकंन के लिए ड्राफ्टेबिलिटी (पशुशक्ति) पैरामीटर का आकलन और उसमें उत्तरोतर सुधार और स्थानीय किसानों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कृषि उपकरणों की पहचान तथा सुधार करने की जरूरत

कृषि कार्यो में गोवंश का उपयोग

है। भारवाहक जानवरों की दक्षता और उसके बढ़े हुए उपयोग से पेट्रोडालर की बचत होगी तथा पर्यावरण को भी बचाया जा सकेगा। अवर्णित गोवंश का एक बड़ा प्रतिशत गौशाला में उपस्थित है। आस–पास के एक परिभाषित नस्ल से गौशाला तथा गाँव के गैर वर्णित गोवंश में आनुवांशिक विकास कर उन्हें आवारा होने से बचाया जा सकता है। एक परिभाषित वर्णित नस्ल क्षेत्र के आसपास के इलाकों में मौजूद अवर्णित गोवंश को केवल उस क्षेत्र के वर्णित नस्ल द्वारा उन्नत करने की आवश्यकता होती है। अतः ब्रीडींग ट्रैक्ट (प्रजनन क्षेत्र) के आसपास के अवर्णित गोवंश का ब्रीडींग ट्रैक्ट के वर्णित नस्ल से आनुवांशिक सुधार हेतु ठोस परियोजना बनाने की जरूरत है।

गोबर और गौमूत्र के मूल्य व उपयोगिता को देखते हुए रासायनिक खेती की जगह जैविक और प्राकृतिक खेती, रायायनिक खेती की मिट्टी को बेहतर बनाने के लिए इनका उचित उपयोग किया जाना चाहिए जिससे किसानों की आमदनी बेहतर होगी। इस संबंध में कई उदाहरण और प्रकरण (केस) स्टडी है। अग्निहोत्र के लिए देसी नस्लों के गौबर के उपले का निर्यात किया गया है।

नर पशुओं के घटते उपयोग तथा आनुवांशिक सुधार हेतु सिर्फ उच्च कोटि के नर के जरूरत के कारण बड़ी संख्या में नर गोवंश अनुपयोगी हो जाते हैं। एक विचारनीय पहलू यह है कि अनुपयोगी गोवंश के वध पर प्रतिबंध है। भारतीय संस्कृति में गोवंश का वध सामाजिक धारणाओं के विरूद्ध माना गया है। शायद कृषि आधारित जीवन प्रणाली में पशुओं की उपयोगिता को देखते हुए इस तरह के प्रतिबंध पूर्व में उचित भी था। लेकिन आज की परिस्थितियों में धार्मिक दृष्टिकोण के अलावा वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से इसे समझने एवं इस पर विचार करने की जरूरत है। इनकी संख्या को देखते हुए अनुपयोगी नरों के वैकल्पिक उपयोग पर भी एक समग्र समीक्षा तथा नीति निर्धारण की जरूरत है। भारत में गोवंश के लिए स्थानीय देसी नस्लों के लिंग आधारित सेक्सड सीमेन का विकास एक महत्वपूर्ण तकनीकी हस्तक्षेप हैं। वर्तमान में लिंग आधारित वीर्य केवल विदेशी नस्लों के लिए उपलब्ध है। इससे अधिक संख्या में नर बछड़ों को पैदा होने से बचाया जा सकेगा। नर बछडो का आवारा जानवर बनने की संभावना अधिक होती है।

निष्कर्ष

आज नन्दी के देश में गोवंश गौशालाओं में बंदी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं या सड़कों पर, खेत खलिहानों में आवारा घुम रहे हैं। इसके ठीक विपरीत अन्य प्रमुख पालतू पशु जैसे भैंस, भेड़, बकरी का आवारा स्वरूप में देखना असंभव है। भारतीय संस्कृति में गोवंश का अतिविशिष्ट स्थान होने के बावजूद आज इसकी दयनीय स्थिति, हमारे सांस्कृतिक पतन, नीतियों में खामी तथा गोवंश के उत्थान के लिए अधूरे प्रयास को दर्शाता है। आज गोवंश के आवारा होने से बचाने के लिए समग्र पहल की जरूरत है।

एक ओर आवारा गोवंश की संख्या वृद्धि को कम करने तो दूसरी ओर दुग्ध उत्पादन कम होने पर भी स्थानीय गोवंश से प्राप्त सभी उत्पादों और सेवाओं के बेहतर उपयोग करने की आवश्यकता है। अपनी स्थानीय अनुकूलनशीलता, गुणवत्ता वाले दूध, गोबर और मूत्र के साथ–साथ पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित पशु शक्ति के संदर्भ में क्रॉसब्रीड पर देशी गोवंश की श्रेष्ठता को देखते हुए, हमें ऐसे कारक जो आवारा पशुओं की संख्या को कम करने में मदद करेगा, जैसे कि संभावित देसी गोवंश नस्लों को पहचानने की गति को बढ़ाना, रिवर्स क्रॉसब्रीडींग के माध्यम से क्रॉसब्रीड गायों से स्वदेशी बछड़ों को बढ़ाने के लिए भ्रूण हस्तांतरण का विस्तार, कृषि और चिकित्सा के लिए गोबर और गौमूत्र की उपयोगिता को मूल्य संवर्धन के माध्यम से बढ़ाना, पशु शक्ति के उपयोग को उचित मान्यता देना या उनकी कार्यात्मक दक्षता को बढ़ाना। दीर्घकालीन दृष्टिकोण के रूप में आवारा पशुओं को कम करने के लिए भारवाहक नस्लों को द्वि–उद्देश्यीय प्रकार की नस्ल बनाने के लिए अनुवांशिक सुधार की आवश्यकता है। जबकि पहले से परिभाषित द्वि–उद्देशीय नस्लों को दुधारू बनाने के लिए अनुवांशिक सुधार की जरूरत है।

ऊँट दौड़ : पोषण की विशेष आवश्यकताएँ

राजेश कुमार सावल
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर

ऊँट एक उल्लेखनीय जानवर हैं जो कठोर रेशेदार पदार्थों को पचाने के लिए एक मजबूत पाचन तंत्र के साथ विकसित हुआ है, इस कारण यह कम गुणवत्ता वाले रेशेदार आहार (फीड) पर जीवित रहने के लिए सक्षम हैं। यह पशु मुख्यतः ब्राउजर होने के नाते उच्च गुणवत्ता वाले आहार जैसे वृक्षों की पत्तियों, फलियों इत्यादि एवं कठोर वस्तुएं जैसे वृक्षों की छाल, पतली टहनियों/सूखी लकड़ी का चयन करने में सक्षम हैं जिसे वे कुशलता से पचा सकते हैं।

अन्य जुगाली करने वाले पशुओं की तुलना में ऊँटों को ऊर्जा की आवश्यकता कम होती है, और पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण के लिए एक कुशल तंत्र विकसित हुआ है।

ऊँट छद्म–जुगाली करने वाले होते हैं। एक साधारण कक्षीय पेट वाले पशु और मवेशियों तथा भेड़ों में पाए जाने वाले चार कक्षीय पेट के विपरीत होता है। ऊँट अन्य पशुओं के समान किण्वन मार्ग के माध्यम से उच्च फाइबर फीड (अधिक रेशे वाली) को भी पचा सकता है।

ऊँट दौड़ 5 से 40 किलोमीटर तक हो सकती है। सामान्यता ऊँट 35 से 40 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से 30 से 60 मिनट तक दौड़ सकता है। वे लंबी दूरी और अधिक समय तक के लिए दौड़ने की क्षमता रखते हैं, घोड़ों के समान गति पर ऊँट सरपट दौड़ सकता है परन्तु वह जल्दी थक जाता है।

इसलिए खास चुनौती, ऊर्जा स्रोतों का उत्पादन करने के लिए ऊँटों को खिलाने की है जो उन्हें घोड़े की तरह प्रदर्शन करने के लिए गहन मांसपेशियों के व्यायाम का समर्थन करते हैं।

ऊर्जा की प्रयोजनमूलक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऐसे खाद्य पदार्थ की आवश्यकता है जो कॉर्बोहाइड्रेट से भरपूर हो, कीमत कम हो, पाचन धीरे–धीरे हो नहीं तो, ऊर्जा अनावश्यक बर्बाद हो जाएगी। पश्चिमी क्षेत्र में पैदा होने वाले अनाज में जौ/जई और फलों में खजूर इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। अनाज की मोटी पिसाई कर पशुओं को दी जा सकती है, दोनों ही अनाज में प्रोटीन व रेशे की मात्रा अच्छी होती है तथा दोनों ही ऊर्जा के अच्छे स्त्रोत भी हैं। इसके अतिरिक्त फलों में खजूर का इस्तेमाल किया जा सकता है। अक्सर गुच्छे में लगभग 30 प्रतिशत फल जल्दी पक जाते हैं। इन फलों की कीमत भी कम मिलती है। इसके अतिरिक्त फलों की शेल्फलाइफ कम होती है। ऐसे में खजूर के फलों को एक प्रतिशत यूरिया के साथ उपचारित कर धूप में सूखा कर इस्तेमाल किया जा सकता है। सूखी हुई खजूर को सीधे या पीस कर पशु को खिलाया जा सकता है।

खजूर पारंपरिक रूप से ऊँटों के लिए आहार का हिस्सा है और इसमें मौजद कार्बोहाइड्रेट चयापचय ऊर्जा का एक अच्छा स्रोत हैं। खजूर में प्रोटीन की मात्रा लगभग 3.5 प्रतिशत होती है। खेजड़ी की पत्ती प्रोटीन का स्थानीय स्रोत्र है अतः इसे भी खिलाया जा सकता है। अधिक ऊर्जा के लिए खोपरा इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें लगभग 20 प्रतिशत प्रोटीन एवं 10 प्रतिशत तेल, 13 प्रतिशत सुपाच्य फाइबर होता है। इसके अतिरिक्त यह कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम और पोटैशियम का अच्छा स्रोत्र है। तटीय क्षेत्रों में इसका उत्पादन भी अच्छा होता है। नारियल तेल में 90 प्रतिशत से अधिक तेल संतृप्त होते हैं और 75 प्रतिशत मध्यम श्रृँखला वसा अम्ल (फैटी एसिड) होते हैं। मध्यम श्रृँखला फैटी एसिड का महत्व यह है कि ये तेल अवशोषित होते हैं और सीधे यकृत में ले जाते हैं और तेजी से चयापचय होते हैं। इसकी तुलना में कम श्रृँखला फैटी एसिड को लसीका द्वारा अवशोषित और परिवहन किया जाता है और धीरे–धीरे चयापचय किया जाता है। खोपरा में बाईपास प्रोटीन का उचित स्तर होता हैं जो कि ऊँट जैसे जुगाली करने वाले जानवरों के लिए आवश्यक है। खजूर, तुरंत ऊर्जा प्राप्ति का अच्छा स्रोत्र है, खेजड़ी प्रोटीन का और खोपरा प्रोटीन व ऊर्जा का, तीनों के संयोजन से दौड़ने वाले पशु के लिए उत्तम आहार बनाया जा सकता है जिसमें खजूर, खेजड़ी की पत्ती एवं खोपरा

की खली, प्रत्येक की 32 प्रतिशत व इसके साथ नमक एवं खनिज मिश्रण (मिनरल मिक्सचर) (प्रत्येक 2 प्रतिशत) से संयोजित आहार बनाया जा सकता है।

ऊँटों को कम समय की दौड़ को पूरा करने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कम दूरी की दौड़ के सघन व्यायाम के लिए उच्च ऊर्जा की मांग रहती है। दौड़ने वाले पशुओं में मांसपेशियों के तेजी से कार्य करने के लिए पशु शरीर में ऊर्जा के उच्च स्तर का उत्पादन करने वाले स्रोतों की मांग स्टार्च खिलाकर पूरी की जाती है जो आंतों में ग्लूकोज की उत्पत्ति करता है व जो आसानी से पच जाती हैं। परन्तु स्टार्च में पशु शरीर में कार्बोहाइड्रेट के रूप में ऊर्जा के भण्डारण और कार्योन्मुख करने की क्षमता बहुत कम होती है जिसे वे पचा सकते हैं, और लैमिनाइटिस, कोलिक, बांधने और असहज व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं।

ऊर्जा की आपूर्ति के लिए जुगाली का विशेष महत्व है जो कि भोजन में रेशे की मात्रा पर निर्भर करती है। कम रेशे वाले पदार्थ जैसे पशु आहार या विशेष मिश्रण में प्रोटीन व ऊर्जा के स्रोत्र अधिक होते हैं। यह कम समय में ही पच जाते हैं। इसके विपरीत अधिक रेशे वाले पदार्थ को पचाने में समय लगता है। अधिक देर के लिए जुगाली के माध्यम से आहार के रेशों को और छोटा किया जाता है फिर रूमेण में चयापचय से परिवर्तनशील फैटी एसिड बनते हैं जिससे ऊर्जा का संचार होता है।

आम तौर पर जुगाली करने वाले पशुओं की आंतों में थोड़ा स्टार्च पचता है। ऊर्जा आपूर्ति बढ़ाने के लिए स्टार्च के उच्च स्तर को खिलाने से रूमेन में अवशोषित हो सकता है और जुगाली करने वालों की आंतों में बाधा उत्पन्न हो सकती है, जिससे एसिडोसिस और लैमिनाइटिस हो सकता है। इसी तरह के प्रभाव, अनाज खिलाए गए ऊँटों में देखा गया है।

ऊँट में रेसिंग के लिए पेशी समारोह के लिए ऊर्जा की मांग में वृद्धि होती है, जिसके लिए घास या अनाज के न्यूनतम आहार के साथ अतिरिक्त पूरक ऊर्जा स्रोत की आवश्यकता होती है। भोजन को अधिक पाच्य बनाने के लिए रूमेन की चयापचय आवश्यक होती है, जिस कारण ऊँट की पाचन (क्रिया) शक्ति का विशेष योगदान रहता है।

वाष्पशील फैटी एसिड जैसेकि, सीट्रेट, प्रोपियोनेट और ब्यूटिरेट का उत्पादन ऊँट अपने रुमेन में किण्वन से करते हैं। दौड़ के लिए इस्तेमाल किये जाने वाली ऊँटों के आहार में चारे के अतिरिक्त दाना/चाटे की मात्रा भी काफी होती है जिस कारण फैटी एसिड का उत्पादन बढ़ जाता है व दौड़ के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले ऊँट को अधिक शक्ति प्रदान करता है। शक्तिशाली पाचन तंत्र के कारण ऊँट, अपने द्वारा खाए जाने वाले भोजन से अन्य पशुओं की तुलना में अधिक ऊर्जा को उत्पादन कर सकते हैं। इस प्रजाति में ग्लूकोज और यूरिया रीसाइक्लिंग को उनके विशेष चयापचय के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है।

अन्य मवेशियों और घोड़ों के लिए वजन का 3.4 प्रतिशत की तुलना में ऊँट अपने वजन का लगभग 1.7 प्रतिशत ही अपने भोजन में 70 प्रतिशत शुष्क पदार्थ का सेवन करता है। जुगाली करने वाले पशुओं की तुलना में ऊँटों में उच्च रेशीय पाचन क्षमता होती है।

ऊँट कम गुणवत्ता वाले भोज्य पदार्थों को पचा सकता है। रुमेन माइक्रोफ्लोरा की विस्तृत श्रृँखला होने के कारण अधिक रेशे वाले चारा पदार्थों को पचाने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं और यूरिया पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) भी उच्च स्तर के अनुकूल होता है। ग्लूकोज और यूरिया रीसाइक्लिंग के अपने विशेष चयापचय के लिए यह प्रजाति अन्य पशुओं से अधिक सक्षम आंकी गई है।

उष्ट्र दौड़ की आवश्कताओं को देखते हुए पौष्टिक आहार का मिश्रण घरेलू/गाँव स्तर पर तैयार किया जा सकता है और ऊँटों को दौड़ के लिए तैयार किया जा सकता है, ऐसे पशुओं को पोषण की दृष्टि से पश्चिमी क्षेत्र में अच्छा सूखा चारा जैसे सेवन की कूत्र, मूंगफली/ग्वार के फसल अवशेष मुख्य हैं। ऊँट को प्रतिदिन दौड़ने का प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है जिससे नियमित समय के लिए अभ्यास करने की आदत बन सके ताकि पशु में सहनशक्ति का निर्माण हो सके। प्रतिदिन अभ्यास से कुछ देर आराम के पश्चात स्वच्छ पानी का होना अति आवश्यक है और साथ ही सूखा चारा और फिर सुबह के समय में पौष्टिक मिश्रण मिलने से पशु की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। प्रतिदिन के अभ्यास के हिसाब से मिश्रण बढ़ाया/घटाया जा सकता है ताकि अभ्यास के पश्चात शारीरिक शिथिलता प्रकट/महसूस ना हो।

प्लास्टिक का सदुपयोग करके पर्यावरण को बचाएँ

बनवारी लाल[1], प्रियंका गौतम[2] एवं रंग लाल मीणा[1]
[1,2]वैज्ञानिक
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, राजस्थान
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर

जल, वायु, जैव विविधता, जीवाष्मीय खनिज एवं मिट्टी इत्यादि प्राकृतिक संसाधन हमें पर्यावरण से प्राप्त होते हैं। जब जनसंख्या कम थी तब संसाधनों का प्रयोग भी सीमित था। लेकिन बढ़ती जनसंख्या के चलते अत्यधिक मात्रा में पदार्थों का उपयोग करने से प्राकृतिक संसाधनों पर भारी बोझ पड़ता है, फलस्वरूप पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव हो रहा है। भारत में विश्व की 17.84 प्रतिशत जनसंख्या की आवश्यकता 2.4 प्रतिशत जमीन और 4 प्रतिशत जल संसाधनों से पूरी होती है। भारत की अमूमन 65 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर करती है जिससे देश के 58 प्रतिशत लोगो को रोजगार प्राप्त है। बढ़ती जनसंख्या को भरपूर खाद्यान्न और कृषि आधारित उद्योगों को निरंतर कच्चा माल, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों से मुहैया कराना सबसे बड़ी चुनौती है। मानव जीवन जल, वायु तथा मृदा पर आधारित है और ये तीनों मिलकर जीवन के लिए संपूर्ण पारिस्थितिकी–तंत्र का निर्माण करते हैं, किंतु मानव के लिए, किसी भी कीमत पर सफलता अर्जित करना ही एकमात्र उद्देश्य बन गया है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह जीवन के आधारभूत मूल तत्वों से खिलवाड़ करने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र में ऐसे तत्वों का प्रवेश हो गया है, जो एक दिन मानव जीवन को ही नष्ट कर देंगे। आधुनिक समाज में प्लास्टिक मानव–शत्रु के रूप में उभर रहा है। प्लास्टिक प्रदूषण हमारे पर्यावरण को काफी तेजी से नुकसान पहुंचा रहा है। प्लास्टिक पदार्थों से उत्पन्न कचरे का निस्तारण काफी कठिन होता है और पृथ्वी पर प्रदूषण में भी इसका काफी अहम योगदान है, जिससे यह एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है। समाज में फैले आतंकवाद से तो छुटकारा पाया जा सकता है, किंतु प्लास्टिक से छुटकारा पाना अत्यंत कठिन है, क्योंकि आज यह हमारे दैनिक उपयोग की वस्तु बन गया है। कृषि, चिकित्सा, भवन–निर्माण, विज्ञान, सेना, शिक्षा, मनोरंजन, अंतरिक्ष कार्यक्रमों और सूचना प्रौद्योगिकी आदि में प्लास्टिक का उपयोग हो रहा है।

भारत में कुल जल का लगभग 80–85 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में उपयोग होता है। वर्षा जल की अनिश्चितता के कारण जल संसाधनों में वर्ष दर वर्ष कमी देखने को मिल रही है। जिसका सीधा असर कृषि उत्पादन पर पड़ना लाजमी है. अतः समय रहते हमें प्राप्त वर्षा जल और उपलब्ध जल संसाधनों के कुशल संरक्षण पर ध्यान देना होगा। कृषि आदान के रूप में प्लास्टिक के प्रयोग से भारत के जागरूक किसान अब प्रति इकाई अधिकतम गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन लेकर कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर जल संरक्षण, जल के कुशल प्रबंधन तथा वैज्ञानिक फसल प्रबंधन से ही भारतीय कृषि को टिकाऊ बनाया जा सकता है। इस दिशा में प्लास्टीकल्चर उपयोग और विकास की महती भूमिका हो सकती है। प्लास्टीकल्चर जैसे सूक्ष्म सिंचाई तथा नियंत्रित वातावरण में खेती से हम प्राकृतिक संसाधनों यथा भूमि, जल और प्रकाश का बेहतरीन उपयोग कर सकते हैं और प्रतिकूल मौसम में भी भरपूर फसल उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। हवा, पानी की तरह अब धीरे–धीरे प्लास्टिक भी हमारे जीवन का जरूरी हिस्सा बन गया है। खेती की बात करें तो खेती किसानी भी अब प्लास्टिक के बिना अधूरी भी न कहें तो इसकी कामयाबी जरूर अधूरी हो जाती है।

प्लास्टिक का अत्यधिक उपयोग, परिणाम एवं निस्तारण

प्लास्टिक एक ग्रीक शब्द 'प्लास्टीकोस' से बना है, जिसका सीधा तात्पर्य है आसानी से नमनीय पदार्थ जो किसी आकार में ढाला जा सकें। 1970 के दशक में इसका

उपयोग औद्योगिक तथा घरेलू क्षेत्र में अप्रत्याशित रूप से बढ़ा। विश्व में औसतन प्लास्टिक की खपत 15 किलो प्रतिव्यक्ति की तुलना में भारत में यह खपत लगभग प्रति व्यक्ति लगभग 1 किलो है। इस तरह विश्व की तुलना में यह खपत भारत में प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत है। भारत में प्रतिवर्ष करीब 700 टन प्लास्टिक अपशिष्ट निकलता है, जबकि ऐसे प्लास्टिक अपशिष्ट की मात्रा विश्व में 7000 टन है। प्लास्टिक आज पर्यावरण प्रदूषण का आम कारक है। सरकारों की ओर से इस पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगाने के बारे में लम्बे समय से आश्वासन दिए जाते रहे हैं। मगर हकीकत यही है कि सरकारों और सम्बन्धित महकमों द्वारा प्लास्टिक पर रोक लगाने सम्बन्धी भरपूर प्रयास नहीं किया गया, जबकि राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण से लेकर देश की अदालतों तक ने अलग–अलग मामलों में सरकारों को इसे लेकर कई बार निर्देश दिए हैं। पर इन सबका कोई ठोस असर जमीन पर होता हुआ नहीं दिखा है। अपनी विविध विशेषताओं के कारण प्लास्टिक आधुनिक युग का अत्यंत महत्वपूर्ण पदार्थ बन गया है। बाजार में खरीदारी के लिए रंग–बिरंगें कैरी बैग से लेकर रसोईघर के बर्तन, कृषि के उपकरण, परिवहन वाहन, जल–वितरण, भवन, रक्षा उपकरण एवं इलेक्ट्रॉनिक्स सहित अनेक क्षेत्रों में आज प्लास्टिक का बोलबाला है। तमाम खूबियों वाला यही प्लास्टिक जब उपयोग के बाद फेंक दिया जाता है तो यह अन्य कचरों की तरह आसानी से नष्ट नहीं होता। एक लंबे समय तक अपघटित न होने के कारण यह लगातार एकत्रित होता जाता है और अनेक समस्याओं को जन्म देता है। जिन देशों में जितना अधिक प्लास्टिक का उपयोग होता है, वहां समस्या उतनी ही जटिल है। चिंता की बात तो यह है कि प्लास्टिक का उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। जबकि पिछले वर्षों में जो प्लास्टिक कचरे में फेंका गया, वह ज्यों–का–त्यों धरती पर यत्र–तत्र बिखरकर प्रदूषण फैला रहा है। भारत में अभी भी प्लास्टिक का उपयोग विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है, लेकिन इसका प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। सन् 2001–02 में भारत में प्लास्टिक की मांग 4.3 मिलियन टन के रूप में देखा गया। वर्तमान में भारत में प्लास्टिक का बाजार 25,000 करोड़ रुपए का है। एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि हमारे देश के शहरों के कूड़े में 10 प्रतिशत प्लास्टिक की वस्तुएं, 5 प्रतिशत रेशे के टुकड़े होते हैं प्लास्टिक की वस्तुओं में अनेक टूटे–फूटे बर्तन एवं घरेलू उपकरण होते हैं। कुछ दशकों पूर्व तक शहरों से निकलने वाले कूड़े में प्लास्टिक बहुत कम होता था। कूड़े में अधिकांश कार्बनिक पदार्थ ही हुआ करते थे, जो जल्दी ही नष्ट हो जाते थे या खाद के रूप में बदल जाते थे।

प्लास्टिक कचरे को ठिकाने लगाने के लिए अब तक तीन उपाय अपनाए जाते रहे हैं। आमतौर पर प्लास्टिक के न सड़ने की प्रवृति को देखते हुए इसे गड्ढों में भर दिया जाता है। दूसरे उपाय के रूप में इसे जलाया जाता है, लेकिन यह तरीका बहुत प्रदूषणकारी है। प्लास्टिक जलाने से आमतौर पर कार्बन डाइऑक्साइड गैस निकलती है। उदाहरण स्वरूप, पॉलिस्टीरीन प्लास्टिक को जलाने पर कलोरो–फ्लोरो कार्बन निकलते हैं, जो वायमुंडल की ओजोन परत के लिए नुकसानदायक हैं। इसी प्रकार पॉलिविनायल क्लोराइड को जलाने पर क्लोरीन, नायलान और पॉलियूरेथीन को जलाने पर नाइट्रिक ऑक्साइड जैसी विषाक्त गैसें निकलती हैं। प्लास्टिक के निपटान का तीसरा और सर्वाधिक चर्चित तरीका प्लास्टिक का पुनःचक्रण है। पुनःचक्रण का मतलब प्लास्टिक अपशिष्ट से पुनः प्लास्टिक प्राप्त करके प्लास्टिक की नई चीजें बनाना। प्लास्टिक पुनःचक्रण की शुरूआत सर्वप्रथम सन् 1970 में कैलीफोर्निया की एक फर्म ने की। इस फर्म ने प्लास्टिक की खर्चन और दूध की प्लास्टिक बोतलों से नालियों के लिए टाइल्स तैयार किए। प्लास्टिक के पुनःचक्रण का काम बहुत कम किया जाता है। इसका मुख्य कारण पुनःचक्रण प्रक्रिया का महंगा होना है।

कृषि में प्लास्टिक का उपयोग

कृषि के व्यवसायीकरण में प्लास्टिकल्चर की महती भूमिका है। भारत के कृषि क्षेत्रों में व्याप्त इन समस्याओं से निपटने के लिए प्लास्टिकल्चर का इस्तेमाल जैसे फव्वारा और बूंद–बूंद सिंचाई के मध्यम से कुशल जल प्रबंधन, तालाबों और जलाशयों में प्लास्टिक लाइनिंग से जल सरंक्षण, संरक्षित खेती, पौध शाला प्रबंधन वरदान साबित हो सकता है। खेती, बागबानी, जल प्रबंधन, खाद्यान्न भंडारण

और संबंधित क्षेत्रों में प्लास्टिक के उपयोग से भारत में द्वितीय हरित क्रांति का पदार्पण हो सकता है जिससे आने वाले वर्षो में हमारी कृषि समोन्नत और किसान खुशहाल हो सकते हैं। प्लास्टिकल्चर कई फायदे देता है और देखा जाए तो खेती में निवेश का एक खास घटक है जिसके अनुप्रयोग से नमी की बचत, पानी की बचत, उर्वरक और पोषक तत्वों का सही इस्तेमाल करने में सहायता मिल रही है। एक आकलन के अनुसार माइक्रो इरिगेशन तकनीक के सही प्रयोग से 50–70 प्रतिशत तक पानी की बचत के साथ–साथ उर्वरक उपयोग क्षमता में भी आशातीत बढ़त होती है जिसके फलस्वरूप फसलोत्पादन में 30 से 100 प्रतिशत का इजाफा हो सकता है। भारत में पानी की कमी, निम्न उत्पादकता और उर्वरकों के असंतुलित इस्तेमाल से होने वाले कार्बन उत्सर्जन के ऊंचे स्तर को प्लास्टिकल्चर के कुशल प्रयोग से कम किया जा सकता है। मृदा में नमी संरक्षण, पानी की बचत, उर्वरक खपत की कमी, जल और पोषक तत्वों के न्यूनतम उपयोग, नियंत्रित वातावरण में वर्ष पर्यन्त खेती, पादप संरक्षण तथा नवीन्मेषी पैकेजिंग समाधान में प्लास्टिकल्चर का उपयोग वरदान सिद्ध हो रहा है। जिससे फलों और सब्जियों के संग्रहण, भण्डारण तथा आवागमन के दौरान स्व–जीवन बढ़ाने में मदद मिलती है।

प्लास्टिक मल्चिंग

कई किसानों के सामने ये समस्या आती है कि उनके खेत में फसलों की उत्पादकता धीरे–धीरे कम हो रही है, ऐसे किसान प्लास्टिक मल्चिंग का प्रयोग करके खेती की उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं। प्लास्टिक मल्चिंग पौधों के चारों तरफ की भूमि को प्लास्टिक फिल्म से व्यवस्थित रुप से ढकने की क्रिया है। वर्तमान में प्रयोग में लाए जाने वाले प्लास्टिक फिल्म विभिन्न रंगों एवं मोटाई में उपलब्ध है। तुलनात्मक रूप से प्लास्टिक पलवार अन्य पलवारों से पूरी तरह से पानी के लिए अभेद्य हैं, इसलिए प्रत्यक्ष रूप से मिट्टी से नमी के वाष्पीकरण, पानी का कम उपयोग और मिट्टी कटाव को रोकती है। इस प्रकार पलवार जल सरंक्षण में एक सकारात्मक भूमिका निभाती है तथा पैदावार बढ़ाने में मदद करती है। खेत में लगे पौधों की जमीन को चारों तरफ से प्लास्टिक फिल्म के द्वारा सही तरीके से ढकने की प्रणाली को प्लास्टिक मल्चिंग कहते हैं। यह फिल्म कई प्रकार और कई रंग में आती है।

प्लास्टिक मल्च फिल्म का चुनाव– प्लास्टिक मल्च फिल्म का रंग काला, पारदर्शी, दूधिया, प्रतिबिम्बित, नीला, लाल आदि हो सकता है। **काली फिल्म** – काली फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खरपतवार से बचाने तथा भूमि के तापक्रम को नियंत्रित करने में सहायक होती है। बागवानी में अधिकतर काले रंग की प्लास्टिक मल्च फिल्म प्रयोग में लायी जाती है। **दूधिया या सिल्वर युक्त प्रतिबिम्बित फिल्म** – यह फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ भूमि के तापमान कम करती है। **पारदर्शी फिल्म**– यह फिल्म अधिकतर भूमि के सोलेराइजेशन में प्रयोग की जाती है। ठंडे मौसम में खेती करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। **फिल्म की चौड़ाई** – प्लास्टिक मल्चिंग के प्रयोग में आने वाली फिल्म का चुनाव करते समय उसकी चौड़ाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए जिससे यह कृषि कार्यों में भरपूर सहायक हो सके। सामान्यतः 90 से.मी. से लेकर 180 सें. मी. तक की चौड़ाई वाली फिल्म ही प्रयोग में लायी जाती है। **फिल्म की मोटाई** – प्लास्टिक मल्चिंग में फिल्म की मोटाई फसल के प्रकार व आयु के अनुसार होनी चाहिए।

प्लास्टिकल्चर का कृषि एवं बागवानी क्षेत्र में उपयोग

प्लास्टिकल्चर का उद्देश्य कृषि, बागवानी, जल प्रबन्धन तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में प्लास्टिक का उपयोग करके कृषि एवं बागवानी फसलों की उत्पादकता बढ़ाना है। प्लास्टिकल्चर अप्रत्यक्ष कृषि निवेश का अति महत्वपूर्ण घटक है। इसके फलस्वरूप नमी संरक्षण, पानी की बचत, उर्वरक खपत की कमी, जल और पोषक तत्वों के न्यूनतम उपयोग में सहायता, नियंत्रित पर्यावरण कृषि के आर्थिक रूप से व्यावहारिक बनाने, नेट द्वारा पादप संरक्षण तथा नवीन्मेषी पैकेजिंग में सहायता आदि है। जिससे फलों और सब्जियों के संग्रहण भण्डारण तथा आवागमन के दौरान स्व–जीवन बढ़ाने में मदद मिलती है। नर्सरी में प्लास्टिकल्चर गुणवत्ता वाली कलमों, पौधों को उगाने के लिए आधुनिक नर्सरी, प्लास्टिक बैग, गमलों, प्लकिंग

ट्रे, बीज ट्रे, लटकने वाली बाल्टियों का इस्तेमाल किया जाता है। नर्सरी बैग, प्लास्टिक के गमले, ट्रे, तालाब और जलाशयों में जल रिसााव रोकने हेतु प्लास्टिक के अस्तर, टपक सिंचाई, फव्वारा सिंचाई प्रणाली, प्लास्टिक मल्च, हरित गृह, छायादार जाल, पक्षियों के जाल, कीट रोधी जाल, वर्मीकल्चर बैग, कैरेट आदि प्लास्टिक के उत्पाद प्रमुख हैं। बागवानी के क्षेत्र में गुणवत्ता युक्त कलमों, पौधों को उगाने के लिए आधुनिक नर्सरी, प्लास्टिक बैग, गमलों, बीज ट्रे, लटकने वाली टोकरी, स्प्रेयर आदि का इस्तेमाल बखूबी से किया जा रहा है। इनसे पौधों के रखरखाव तथा एक स्थान से दूसरे स्थान लाने–ले जाने में सुगम्यता होती है। आज कल धान की पौध भी प्लास्टिक ट्रे और चटाइयों पर तैयार की जाने लगी है।

तालाब जलाशय में जल रिसाव रोकने हेतु अस्तर

वर्षा जल को संरक्षित कर उसके पुनः उपयोग के लिए तालाब तथा जलाशय का उपयोग सदियों से किया जा रहा है. नहरों का प्रयोग फसलों की सिंचाई के लिए किया जाता है। तालाब, जलाशयों और नहरों से जल रिसाव से जल की हानि होने के अलावा नजदीकी खेतों में जल भराव की समस्या का सामना भी किसानो को करना पड़ता है। जल संसाधनों से पानी के रिसाव को रोकने के लिए प्लास्टिक शीट का अस्तर प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। यह संरध्र (पोरस) मृदा में काफी उपयोगी हैं। जहां तालाबों की जलधारण क्षमता कम होती है। इससे जल लवणता समाप्त होती है तया भण्डारित जल में नमक के बढ़ते हुए वैधन की रोकथाम होती है। वर्षा जल संग्रहण और सिंचाई, मछली पालन, पशुपालन के अलावा घरेलू प्रयोजन हेतु यह एक प्रभावशाली तकनीक है। इसमें 200 से 250 माइक्रोन फिल्म का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक अस्तर के प्रयोग से जल रिसाव में कमी आती है, जिससे तालाबों और जलाशयों में लम्बे समय तक पानी उपलब्ध रहता है। इसके अलावा जल भराव, मृदा कटाव, जल लवणता जैसी समस्याओं से निजात मिलती है।

पलवार बिछाना

मृदा नमी को संरक्षित करने तथा खरपतवार की रोकथाम के लिए प्लास्टिक फिल्म से पौधे के आसपास की मिट्टी को ढक देने तथा मृदा तापमान संशोधित करने को पलवार (मल्चिंग) बिछाना कहते हैं। सब्जियों के लिए 15 से 25 माइक्रोन की फिल्म का पलवार के लिए उपयोग किया जाता है तथा बागवानी वृक्षों के लिए 50 माइक्रोन की फिल्म का उपयोग किया जाता है। इससे वाष्पोत्सर्जन में कमी आती है जिससे पौधे की वृद्धि के लिए अनुकूल मृदा आर्द्रता तथा तापमान कायम रहता है। बार–बार सिंचाई करने के कार्यों में कमी आती है। खरपतवार की वृद्धि में रोकथाम होती है तथा फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता बढ़ती है, मृदा अपरदन तथा मृदा के पानी में बह जाने से रोकथाम होती है। भारी बारिश के कारण होने वाली मृदा ठोसपन में कमी आती है।

प्लास्टिक तालाब बनाकर जल संग्रहण एवं जल रिसाव पर नियंत्रण

प्लास्टिक पलवार से विभिन्न फसलों एवं सब्जियों की उत्पादकता में वृद्धि

टपक सिंचन प्रणाली

इस सिचाई पद्धति के अन्तर्गत, परिवहन नलिकाओं द्वारा नोजल और ड्रिपर की सहायता से जल, पौधों के जड़ क्षेत्रों में भूमि की सतह या उसके नीचे, बूंद–बूंद कर दिया जाता है। कम पानी में अधिकतम क्षेत्रफल में सिंचाई करने के लिए टपक (ड्रिप) सिंचाई कारगर साबित हुई है। टपक सिंचन प्रणाली से कम दबाव तथा नियंत्रित अन्तराल में पौधों को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व और आवश्यकतानुसार पानी उपलब्ध होता है। इस विधि से घुलनशील उर्वरक, कीट–रोग नाशक दवाओं का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे पोषक तत्वों और पानी का किफायती उपयोग होता है तथा फसल

बूंद–बूंद सिंचाई विधि अपनाकर फसलों की उत्पादकता एवं जल की उपयोग क्षमता में लाभ

उत्पादकता एवं फलों/सब्जियों की गुणवत्ता बढ़ाने में भी मदद मिलती है। टपक सिंचाई से 40–70 प्रतिशत सिचाई जल की बचत होती है। टपक सिंचाई से मृदा कटाव में कमी के साथ–साथ खरपतवार–कीट रोग प्रकोप कम होता है।

फव्वारा सिंचाई विधि

फव्वारा सिंचाई वह विधि है जिसमें सिंचाई जल को पम्प करके प्लास्टिक के पाइप की सहायता से छिड़कने के स्थल तक ले जाया जाता है तथा दबाव द्वारा फुहारों या वर्षा की बूदों के समान सीधे फसल पर छिड़का जाता है। इसमें खेतों में पाइप लाइन लगाकर फव्वारे लगा दिये जाते हैं जिनसे छिड़काव द्वारा पानी खेतों में चारों तरफ फैलता है। इस प्रणाली से जल सामान रूप से वितरित होता है। पम्प सेट या नहर से सिंचाई करने पर खेत तक पहुंचने में क्रमशः 15–20 फीसदी से 30–50 फीसदी पानी बेकार हो जाता है, जबकि बौछारी सिंचाई से इतने ही बहुमूल्य जल की बचत होती है। इस सूक्ष्म सिंचन प्रणाली से पौधों के आसपास का सूक्ष्म वातावरण अच्छा रहने से उत्पाद की गुणवत्ता और मात्रा में वृद्धि होती है। इस पद्धति से सिंचाई करने के लिए भूमि को समतल करने की आवश्यकता नहीं होती हैं। यह विधि सभी प्रकार की फसलों की सिंचाई के लिए उपयुक्त है।

फव्वारा सिंचाई विधि अपनाकर बहुमूल्य जल की बचत

हरित गृह और छायामय जाल (शेड नेट)

हरित गृह (ग्रीन हाउस) तैयार या फुलाए गए ढांचे जिन्हें पारदर्शी सामग्री से ढका जाता है। जिनमें एक नियंत्रित या आंशिक नियंत्रित पर्यावरण के तहत फसलों को उगाया जाता है। ये पौधों द्वारा बेहतर पोषक तत्व ग्रहण करने के लिए प्रकाश संश्लेषण कार्यकलापों की वृद्धि के लिए अनुकूल स्थितियां प्रदान करता है। इनमें उगाई गई फसलों में कीट और रोग का प्रकोप कम होता है तथा पौध सरंक्षण आसान होता है। उच्च गुणवत्ता वाली कलमों, पौधों की नर्सरी तैयार करने में मदद मिलती है। फलों एवं सब्जियों की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। फसलों की उत्पादकता में बढ़ोतरी होती है। यह फसलों को ठण्ड, पाला और हवा से बचाती है। पौधों और फसलों को नाशीजीव, पशु–पक्षियों तथा मौसम की विषम परिस्थितियों से सुरक्षा देने एवं गर्मी से बचाव करने के लिए विशिष्ट शेड नेट का उपयोग किया जाता है। शेड नेट में भिन्न प्रकार

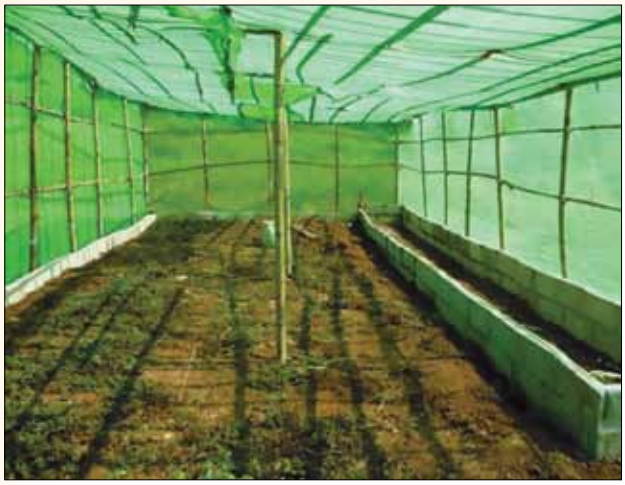

ग्रीन हाउस और लो टनल से फसलों की उत्पादकता में वृद्धि

छायामय (शेड) घटक होते हैं जिनकी सघनता 35 प्रतिशत से 90 प्रतिशत के बीच होती है। वर्तमान समय में सफेद, हरे, लाल तथा काले रंग में शेड नेट उपलब्ध हैं। टमाटर, शिमलामिर्च, ब्रोकली, खीरा की पैदावार लेने के लिए 35 प्रतिशत के शेड नेट अच्छा माना जाता है। बे–मौसमी सब्जियां और फूल उगाने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। इनका इस्तेमाल फल वाले पौधों, औषधीय पौधों, सब्जी तथा मसाला फसलों के पौधों को उगाने के लिए किया जाता है।

निम्न सुरंगक (लो टनल)

निम्न सुरंगक, हरित गृह की भांति प्रभाव देने वाला लघु ढांचा है। पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रियाओं को बढ़ाते हुए इन सुरंगों में कार्बन डाई आक्साईड को समाहित करने में मदद मिलती है। इन ढांचों से पौधों को तेज हवा, सर्द हवा, अधिक वर्षा अथवा बर्फ से सुरक्षा मिलती है। सर्द ऋतु में इसके अन्दर का तापमान बढ़ जाता हैं, इस कारण पौधों का पाले से बचाव हो जाता है।

पैकेजिंग में प्लास्टिक

प्लास्टिक में मौजूद विशिष्ट गुणधर्म जैसे लचीलापन, हल्का वजन, लागत प्रभावी, स्वच्छता सुरक्षित और पारदर्शिता के कारण प्लास्टिक के उत्पादों के प्रसंस्करण, भण्डारण, परीक्षण तथा परिवहन में अमूल्य योगदान दिया है।

पादप संरक्षण नेट

पादप संरक्षण नेट का इस्तेमाल शाकीय तथा फलवाली फसलों को सौर विकिरण,नाशीकीट,पक्षियों, ओलावृष्टि, तेज हवाओं, बर्फ या भारी वर्षा से बचाने के लिए वर्ष भर उपयोग किया जा सकता है।

खेत में प्लास्टिक मल्चिंग करते समय सावधानियां

- प्लास्टिक फिल्म हमेशा सुबह या शाम के समय लगानी चाहिए।
- फिल्म में ज्यादा तनाव नहीं रखना चाहिए।
- फिल्म में जो भी सल हो उसे निकलने के बाद ही मिटटी चढ़ाएं।
- फिल्म में छेद करते वक्त सिंचाई नली का ध्यान रख के सावधानी से करें।
- छेद एक जैसे करें और फिल्म न फटे इस बात का ध्यान रखें।
- मिट्टी चढाने में दोनों साइड एक जैसी रखें।
- फिल्म की घड़ी हमेशा गोलाई में करें।
- फिल्म को फटने से बचाएं ताकि उसका उपयोग दूसरी बार भी कर पाएं और उपयोग होने के बाद उसे छांव में सुरक्षित रखें।

प्लास्टिक जनित प्रदूषण को रोकने के लिए केंद्र सरकार सहित विभिन्न राज्य सरकारें भी प्रयासरत् हैं और इसे रोकने के लिए कई राज्यों में अधिनियम बनाए जा चुके हैं तो कई राज्यों में इन्हें बनाने की प्रक्रिया चल रही है। कृषि में प्लास्टिक का उपयोग करके पानी में बचत, फलों एवं सब्जियों की उत्पादकता तथा गुणवत्ता बढ़ाई जाती है। इससे सब्जियों एवं फलों की भण्डारण के दौरान स्व–जीवन बढ़ाने में मदद मिलती है. साथ ही यह प्रणाली किसानों के लिए लाभदायी सिद्ध हो सकती है।

प्राकृतिक आपदा के समय पशुओं की आहार व्यवस्था

योगेश आर्य[1], जाग्रति श्रीवास्तव[1], श्याम सुंदर सियाग[1], भूपेंद्र कस्वां[1] एवं लूणाराम[1]
[1]स्नातकोत्तर विद्यार्थी
राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

प्राकृतिक आपदा आने पर पशुओं के लिए न केवल पशु आहार की व्यवस्था करनी होती है बल्कि उनकी ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज लवण की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी होती है। वैकल्पिक व्यवस्था के तौर पर आपदा के समय गैर–परम्परागत चारा स्त्रोतों का भी प्रयोग किया जा सकता है। आपदा के समय पशु आहार की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए एक अच्छी कार्य योजना बनाकर उसे क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

आपदा के समय पशु आहार की व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित अनुसार कार्य योजना बनाई जानी चाहिए:

1. सर्वप्रथम यह पता किया जाना चाहिए कि अनुमानित तौर पर कितने पशु आहार की आवश्यकता है। आपदाग्रस्त क्षेत्र में प्रभावित पशुओं में छोटे, बड़े, दुधारू और गर्भित पशुओं की गणना करे क्योंकि पशुआहार की व्यवस्था उसी आधार पर की जाएगी फिर यह पता किया जाना चाहिए कि आस–पास के क्षेत्रों से कितना चारा उपलब्ध हो सकता है। चारे की मात्रा और उसके प्रकार जैसे घास, तूड़ी, कड़बी या भूसा इत्यादि कौनसा चारा उपलब्ध होगा, यह पता करना बेहद जरूरी है।
2. अब इसको सस्ते परिवहन साधनों से किस प्रकार आपदाग्रस्त क्षेत्र तक लाया जाएगा? इसकी योजना बनाकर उसी के अनुसार व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. अगर आपदा के समय गैर–परम्परागत स्त्रोतों का प्रयोग किया जा रहा है तो यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कुछ गैर–परम्परागत चारा स्त्रोतों में प्रति–पोषक–पदार्थ भी पाए जाते हैं, इनको खिलाने से पूर्व, इनको उपचारित किया जाना अत्यंत आवश्यक होता है।
4. पशुओं की ऊर्जा और प्रोटीन की आवश्यकता पूरी करने के लिए कम पोषक चारे का यूरिया– मोलासेस उपचार करके उसको अधिक पौष्टिक बनाया जा सकता है।
5. पशुओं के लिए संतुलित आहार के कम्प्रेसड–फीड–ब्लॉक भी बनाए जा सकते हैं। इनके परिवहन और वितरण में भी आसानी रहती है।

आपदा के समय गैर-परम्परागत चारा स्त्रोतों का उपयोग

गैर–परम्परागत चारा स्त्रोतों में निम्नलिखित को शामिल किया जा सकता है–

I. पेड़–पौधों की पत्तियाँ– खेजड़ी, बबूल, नीम, आम, पीपल, बरगद, बाँस, केला इत्यादि की पत्तियाँ।
II. वनस्पति प्रोटीन पूरक आहार– नीम की खल, महुआ की खल, तरबूज की खल, अरंडी की खल, कुसुम के बीजों की खल इत्यादि।
III. जन्तु प्रोटीन पूरक आहार– कुक्कुट शाला के उप–उत्पाद, बूचड़ खाना के उप–उत्पाद, मांस उप–उत्पाद, पंख उप–उत्पाद, रक्त उप–उत्पाद इत्यादि।
IV. अन्य स्त्रोत– आम की गुठली, इमली के बीज, खेजड़ी की फलियाँ, बबूल की फलियाँ इत्यादि।

गैर-परम्परागत चारा स्त्रोतों में उपस्थित प्रति-पोषक-पदार्थों के उपचार की विधियाँ

गैर–परम्परागत चारा स्त्रोतों में पाये जाने वाले प्रति–पोषक–पदार्थों को दूर करने के लिए इनका भौतिक एवं रासायनिक विधियों से उपचार किया जा सकता है। जैसे अधिक टेनिन की मात्रा वाले चारे का उपचार करने के लिए उसको पानी में भिगोकर उबाला जा सकता है। इसी प्रकार टेनिन और प्रोटीन के मध्य कॉम्प्लेक्स बनने से रोकने के लिए पॉली–इथाईलीन–ग्लाइकोल अथवा

पॉली–विनायल–पाइरोलिडोन का प्रयोग किया जाता है। बिनौला से बने पशु आहार मे गोसीपोल की मात्रा घटाने के लिए इसका ताप–उपचार किया जाता है।

कम्प्रेसड-फीड-ब्लॉक का निर्माण

आपदा के समय कम्प्रेसड–फीड–ब्लॉक बना लिए जाने चाहिए। कम्प्रेसड–फीड–ब्लॉक के निर्माण से कम लागत में ही बेहतर सूखे चारे और दाना मिश्रण के अनुपात वाले संतुलित आहार पशुओं को उपलब्ध करवाए जा सकते हैं। कम्प्रेसड–फीड–ब्लॉक के निर्माण के निम्नलिखित लाभ हैं–

I. इनमें गैर–परम्परागत चारा स्त्रोत प्रयोग मे लेने से लागत कम रहती है।
II. भंडारण के लिए कम जगह की आवश्यकता होती हैं।
III. परिवहन में भी आसानी रहती है।
IV. पशु पूरा कम्प्रेसड–फीड–ब्लॉक ही खा जाता है जिससे अपव्यय नहीं होता है।
V. मजदूरी और प्रबंधन में कम खर्च होता है।
VI. अनुसंधान से यह ज्ञात होता है कि इनसे न केवल रुमेन में किण्वन अच्छा होता है बल्कि मीथेन उत्पादन में भी कमी आती है।

यूरिया मोलासेस उपचारित चारे का निर्माण कर पशुओं को खिलाना

यूरिया मोलासेस उपचारित चारे के प्रमुख संघटक :– प्रति 100 किलोग्राम चारे हेतु निम्नलिखित प्रकार से है–

यूरिया – 2 किलो	मोलासेस (शीरा/गुड) – 10 किलो	
पानी – 10 किलो	खनिज तत्व – 1 किलो	नमक – 1 किलो

यूरिया मोलासेस उपचारित चारे के निर्माण की विधि

1) सबसे पहले 2 किलो यूरिया को 10 किलो पानी में घोल लें।
2) इस घोल में 10 किलो मोलासेस को डालकर अच्छी तरह मिश्रित कर लें।
3) अब इसमें 1 किलो नमक और 1 किलो खनिज तत्व मिला लें, यह मिश्रण 100 किलो चारे के लिए पर्याप्त है।
4) सूखे चारे को छोटे–छोटे टुकडों में बांट लें तथा दो से तीन इंच की परत में फैला लें।
5) अब सूखे चारे पर मिश्रण या घोल का आधा भाग छिड़क कर 30 मिनट तक सूखने देवें, जिससे घोल चारे पर चिपक जाएं।
6) अब चारे को उल्टा–पुल्टा कर शेष बचे आधे मिश्रण का भी छिड़काव कर देवे।
7) इसे अच्छी तरह से सुखा कर इसका भण्डारण कर लें।

अब यह यूरिया–मोलासेस उपचारित चारा पशुओं को आवश्यकता अनुसार खिलाया जाना चाहिए। शुरुआत में पशुओं को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में खिलाना शुरू करते हैं एवं जब पशु अच्छे से खाने लगता है तब मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार से उपचारित चारे को पशुओं को खिलाने से पशुओं के लिए आवश्यक प्रोटीन उसके पेट में रहने वाले जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन को काम में लेकर उपलब्ध करवाई जाती है, इस उपचारित चारे को खिलाकर पशुओ का शारीरिक रखरखाव आसानी से हो सकता है एवं दूध उत्पादन में भी बढ़ोतरी होती है।

यूरिया मोलासेस उपचारित चारा खिलाते समय सावधानियां

1) यूरिया मोलासेस उपचारित चारे की मात्रा शुरू में कम देनी चाहिए फिर धीरे–धीरे बढ़ाई जानी चाहिए। इसमें नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।
2) यूरिया मोलासेस उपचारित चारे का निर्माण वैज्ञानिक विधियों से व निर्दिष्ट मात्रा के अनुसार ही होना चाहिए एवं इसका संग्रहण सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।
3) जुगाली नहीं करने वाले तथा छोटे बछड़े–बछड़ियों (6 माह तक) को उपचारित चारा नहीं खिलाना चाहिए।
4) कभी–कभी दुर्घटनावश पशु द्वारा अधिक यूरिया का सेवन कर लेने से रक्त में अमोनिया का स्तर बढ़ जाता है, जिससे यूरिया विषाक्तता हो जाती है, इसके प्रमुख लक्षण मुंह से अधिक लार टपकना, आफरा आना, मांस पेशियों में ऐठन, पशु का लड़खड़ाना, श्वास लेने में दिक्कत इत्यादि हैं।

5) यूरिया विषाक्तता के लक्षण प्रकट होते ही पशु को 25 लीटर ठंडा पानी पिलाने के बाद 100–200 मिली सिरका पानी में मिलकर देना चाहिए।

फोडर-बैंक में भंडारित चारे का उपयोग

फौडर–बैंक मे चारा उपलब्ध होने पर उसका उपयोग किया जा सकता हैं। साथ ही अगर "हे" अथवा "साइलेज" उपलब्ध हो तो पशुओ के लिए काम आ सकता है। पशुओं को पशु आहार उनके शारीरिक भार, शारीरिक अवस्था के हिसाब से ही दिया जाना चाहिए। युवा ऊँटों को यूरिया मोलासेस मिनरल ब्लॉक देने पर वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी देखी गई, साथ ही यह सस्ता भी पड़ता है।

यूरिया मोलासिस मिनरल ब्लॉक का निर्माण

संघटक/अवयव	प्रतिशत मात्रा
गेंहू की चापड़	40
मोलासेस/शीरा/गुड	38
यूरिया	10
सीमेंट पाउडर	10
खनिज तत्व	1
नमक	1
विटामिन ए एवं डी	10 ग्राम/क्विंटल

यूरिया मोलासिस मिनरल ब्लॉक निर्माण की विधि

यूरिया मोलासिस मिनरल ब्लॉक निर्माण की दो विधियों (गर्म तथा ठंडी) में से ठंडी विधि अधिक सस्ती एवं फायदेमंद है :

- सबसे पहले मोलासिस लेकर इसमें पानी डालकर पतला किया जाता है।
- घुले हुए मोलासिस में नमक खनिज तत्व व यूरिया को मिश्रित किया जाता है।
- तत्पश्चात् इसमे गेंहू की चापड़ को अच्छी तरह समान रूप से मिलाते हैं।
- अब इसमें सीमेंट पाउडर/केल्सायिट मिश्रित किया जाता है।
- इस मिश्रण को लकड़ी या मशीन के सांचों में डालकर दबा दिया जाता है।

आजकल यूरिया मोलासिस मिनरल ब्लॉक बनाने हेतु लघु मशीन भी उपलब्ध है। इसी प्रकार से संतुलित आहार

देने हेतु सभी घटकों को उचित अनुपात में मिलाकर सम्पूर्ण आहार ब्लॉक का निर्माण किया जा सकता है। ये सम्पूर्ण आहार ब्लॉक सभी उम्र के ऊँटो एवं ऊँटनियों के लिए लाभदायक रहते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऊँटों की आहार व्यवस्था

जाग्रति श्रीवास्तव[1], योगेश आर्य[1] एवं ज्योति श्रीवास्तव[1]
स्नातकोत्तर विद्यार्थी
राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारत में ऊँटों की सर्वाधिक आबादी राजस्थान व गुजरात के रेगिस्तानी क्षेत्र में पाई जाती है। यहाँ मिलने वाले ऊँट ड्रोमेडेरी प्रकार के होते हैं। ऊँट शाकाहारी प्रवृत्ति के होते हैं तथा ये अपने आहार के लिए रेगिस्तान में मिलने वाली सूखी घासों, कंटीली झाड़ियों व अन्य क्षेत्रीय पेड़–पौधों पर निर्भर रहते हैं। अन्य पशु प्रजातियों के विपरीत ऊँट, अपने आहार की तलाश में अलग–अलग क्षेत्रों तक जाते हैं और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों को अल्प मात्रा में खाते हैं। इस प्रकार एक विशेष प्रकार की वनस्पति को अधिक मात्रा में नहीं खाने से उसमें उपस्थित प्रतिपोषक कारकों से होने वाले प्रभावों को खतरा नहीं रहता है। रेगिस्तान में उगने वाली सूखा प्रतिरोधी वनस्पति को खाने के लिए ऊँट अनुकूलित होता है जबकि इस प्रकार के वातावरण में अन्य पशु अपनी दैनिक आहार व जल की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाते हैं। अधिकांश पशु पालक ऊँटों को न्यूनतम खर्च पर पालने के लिए चारागाह, जंगलों व कृषि क्षेत्रों का उपयोग करते हैं। ऊँट अपने आहार के लिए ऐसे पादपों का चयन करते हैं जिनमें जल व प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

बोझा ढोने व सवारी के लिए काम में आने वाले ऊँटों को सूखी फलीदार फसलों के अवशेष, सूखा चारा, सूखी पत्तियाँ तथा कुछ मात्रा में बांट दिया जाता है। ऐसे ऊँटों को चरने के लिए नहीं भेजा जाता है। शुष्क पदार्थ के आधार पर ऊँट 1–2.5 किग्रा शुष्क पदार्थ (डीएम) प्रति 100 किग्रा शारीरिक भार पर खा सकता है। आहार की मात्रा पशु तथा वातावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए। वर्तमान में चारागाहों व अन्य आहार स्त्रोतों की कमी के कारण ऊँटों की आहार व्यवस्था एक महत्वपूर्ण समस्या है। निम्न गुणवत्ता के पादप व फसलों के साथ पूरक आहार भी दिया जाना चाहिए। ऊँट को पैलेट के रूप में भी आहार दिया जा सकता है। इस प्रकार के पैलेट खल, कृषि अवशेषों, घास, मक्का, गेहूँ की चोकर, अनाज के दानों व मोलासिस आदि से मिलकर बनाए जाते हैं। इन पैलेट आहार को 6–8 महीनों तक संरक्षित कर रखा जा सकता है। इनके उपयोग से ऊँट में दुग्ध उत्पादन बढ़ता है तथा ऊँट के स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। ऊँट के उचित आहार प्रबंधन द्वारा इनसे मिलने वाले उत्पादन में वृद्धि संभव है। साथ ही कार्यवाहक ऊँटों की कार्यक्षमता भी बढ़ती है।

ऊँटों को दिया जाने वाला पूरक आहार

ऊँटों को संतुलित एवं पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए। इसके लिए जो ऊँट चरने के लिए जाते हैं उनको घर लाने के बाद पूरक आहार दिया जा सकता है ताकि ऊँटों की पोषण संबन्धित आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें। पूरक आहार मे अधिकतर सांद्र आहार ही होता है। परंतु चारागाहों में चारे की उपलब्धता में कमी हो जाने से घर पर मटर का भूसा, मूंग–मोठ और ग्वार चारा, सरसों एवं तारामीरा इत्यादि खिलाया जाता हैं। जबकि सांद्र आहार के रूप में मक्का, जई, बाजरा, जौ, बिनौला, गेंहू की चोकर एवं पिसे हुए चने के साथ आहार में नमक आवश्यक रूप से मिलाकर दिया जाना चाहिए। सान्द्र आहार में 2 प्रतिशत मिनरल मिक्सचर भी मिलाना चाहिए। ऊँट को प्रतिदिन 20–40 लीटर पीने का साफ पानी दिया जाना चाहिए।

वायु को शुद्ध रखने में सहयोगी इंडोर प्लांट

विनोद कुमार यादव[1] एवं शिल्पा यादव[2]
[1]तकनीकी सहायक, [2]सहायक आचार्य
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर
[2]राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

दुनिया के सबसे अधिक प्रदूषित शहरों का आधा हिस्सा भारत में है। ऐसे में यहां रह रहे लोग भी बीमार हो रहे हैं, प्रदूषित हवा से बच्चे और बुजुर्ग सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। इसके साथ ही ब्रॉंकियल अस्थमा, क्रोनिक ऑब्स्ट्रक्टिव पल्मोनरी डिसऑर्डर, इंटरस्टीशियल लंग डिजीज (फेफड़ों का रोग), सिस्टिक फाइब्रोसिस, फेफड़ों के कैंसर पीड़ित लोगों के लिए प्रदूषित हवा परेशानी बढ़ाने का काम कर रही है। ऐसे में हमें अपना और अपने परिजनों का ध्यान रखना बेदह जरूरी है।

विभिन्न कारणों से प्रदूषण हर साल बढ़ता जा रहा है। हालांकि, इससे निपटने के भी कई उपाय हैं। एयर प्यूरिफायर्स से लेकर मास्क और सॉल्ट लैम्प्स तक, कई तरह के उपायों से लोग अपने आसपास की हवा को साफ रखने की कोशिश कर रहे हैं। इसके अलावा आप अपने घर की हवा को इंडोर प्लांट्स के जरिए भी साफ रख सकते हैं। आज हम आपको बता रहे हैं ऐसे पौधों के बारे में जो हवा को साफ करते हैं। प्राकृतिक वायु शुद्धकर्ता के रूप में कार्य करने वाले इंडोर पौधों को बढ़ाना, हमारे वातावरण को तत्काल साफ रखने का एक बढ़िया तरीका है। इसी कारण से इंडोर प्लांट्स यानी घर के अंदर लगाए जाने वाले पौधों का चलन तेजी से बढ़ा है। वजह है इन पौधों की उपयोगिता। ये सिर्फ घर की शोभा ही नहीं बढ़ाते हैं, बल्कि अंदर के वातावरण को ताजगी से भर देते हैं। इनकी वजह से लोग बीमार कम होते हैं।

हम यहाँ ऐसे ही कुछ इंडोर प्लांटस के बारे में बता रहे हैं जो भारत में आसानी से पाए जा सकते हैं तथा जो वायु को शुद्ध रखने में सहयोग प्रदान करते हैं।

मनी प्लांट– मनी प्लांट (एपिप्रेमम ऑर्यूम), जिसे अक्सर 'शैतान की लता' कहा जाता है, कई भारतीय घरों में यह आमतौर पर देखा जा सकता है। कहा जाता है कि यह पौधा सकारात्मक भावनाओं को आकर्षित करता है और घर

की समृद्धि को बढ़ाता है। जैसा भी हो मनी प्लांट्स कम रखरखाव, बढ़ने में आसान और हवा से फॉर्मेल्डिहाइड को नष्ट करने के लिए उत्तम हैं।

स्पाइडर प्लांट– स्पाइडर प्लांट (क्लोरोफिटम कॉमोजम) एक बहुमुखी इनडोर प्लांट है। इसे बहुत कम धूप और पानी की आवश्यकता होती है और यह छोटे गमलों में उगाया जा सकता है। सबसे बढ़िया बात यह है कि इस पौधे का रख–रखाव बड़ा सरल है। इसका उपयोग खिड़कियों, साइड टेबल, फर्श, रिक्त स्थान पर और आँगन को सजाने के लिए भी किया जा सकता है। यह बारहमासी फूल देने वाला पौधा है। इसकी पत्तियाँ लंबी रिबन के आकार की होती हैं। यह पौधा फॉर्मेल्डिहाइड, जाइलीन और टोल्यूइन जैसी गैसों से हवा को साफ रखता है तथा घर के वातावरण में मौजूद एलर्जी पैदा करने वाले हानिकारक तत्वों को दूर करता है।

इंग्लिश ईवी – यदि आप अपने घर या ऑफिस के खाली स्थान को सजाने के लिए एक बेलरूपी पौधे की तलाश कर रहे हैं जो एक वायु शोधक के रूप में भी कार्य करें, तो इंग्लिश ईवी या हेडेरा हेलिक्स आपके लिए सबसे अच्छा विकल्प है। जो लोग घर में पालतू जानवर रखते हैं, उन्हें इंग्लिश ईवी पौधा लगाना चाहिए। ये दूषित बेंजीन, फॉर्मेल्डीहाइड और ट्राइक्लोरोएथिलीन से तो निजात दिलाता ही है, साथ ही पालतू जानवरों से होने वाली एलर्जी से भी बचाए रखता है।

गुलदाउदी– यह एक फूल वाला पौधा है जिसे हम भारतीय आम तौर पर अपने बगीचों में लगाना पसंद करते हैं। इसके परिवार का नाम 'एस्टरेसिया क्रायसांथेमम्स' है और इनके फूल अनेक रंग के तथा बहुत ही आकर्षक होते हैं। गुलदाउदी के पौधों को सबसे ज्यादा घर के आंगन या बगीचे में उगाया जाता है। जब गुलदाउदी के फूल खिल रहे हो तो मनमोहक सुगंध आती है और यह अमोनिया, फॉर्मेल्डिहाइड, जाइलीन और अन्य विषाक्त पदार्थों को खत्म करती है।

स्नेक प्लांट (नाग पौधा)– स्नेक प्लांट, जिसे कभी–कभी 'सांप की जीभ' (सनेसेवीरिया त्रिफैसियाटाटा) भी कहा जाता है, यह संक्रमण के लिए बहुत प्रतिरोधी है, इस पौधे को खत्म करना मुश्किल होता है। स्नेक प्लांट वातावरण से बेंजीन, नाइट्रोजन ऑक्साइड और अन्य एयरबार्न विषाक्त गैसों जैसे कि फॉर्मेल्डिहाइड और ट्राइक्लोरोथिलीन को खत्म करने के लिए अच्छे इंडोर प्लांट में से एक है। इस पौधे को बहुत ही कम धूप की आवश्यकता होती है।

पीस लिली– पीस लिली पौधा घर के वातावरण से जाइलीन, बेंजीन, अमोनिया, फॉर्मेल्डीहाइड, और ट्रिकलोरोएइथीन जैसे दूषित तत्व दूर करने में कारगर होता है। पीस लिली अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया की मूल प्रजाति है। पौधों में खिलने वाले सुंदर फूलों की वजह से यह बड़े कार्यालय और होटलों में सामान्य रूप से विकसित एक पसंदीदा इनडोर प्लांट है।

एरेका पाम– एरेका पाम या गोल्डन केन पाम (क्रिस्लीडोकार्पस लेटसेन्स या डायप्सिस लूटसेन्स) अपनी हवादार पत्तियों और खूबसूरत हरे रंग के साथ एक पसंदीदा पौधा है। जब यह, रहने वाले कमरे, आँगन, बालकनियों और शयनकक्षों में लगाया जाता है, तो यह न केवल फॉर्मेल्डिहाइड, बेंजीन, और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसे विषाक्त गैसों को हवा से हटा देता है बल्कि वातावरण में उचित नमी भी बनाए रखता है। एरेका पाम बहुत आसानी से छोटे गमलों में उगाया जा सकता है।

ऐलोवेरा प्लांट (घृतकुमारी) – ऐलोवेरा प्लांट (घृतकुमारी) का एलो जीनस पहले से ही अपने औषधीय गुणों के कारण काफी लोकप्रिय है। अधिकांश लोग इसके रस को निकालने के लिए विकासित करते हैं, जो कि एक प्राकृतिक मॉइस्चराइजर और लाभदायक मलहम का कार्य करता है। यह एक सूर्य प्रेमी पौधा है और इसे आसानी से खिड़की की चौखट पर लगाया जा सकता है। यह बेंजीन, फॉर्मेल्डिहाइड और रसायन साफ करने में निकलने वाली दूषित गैसों को समाप्त कर हवा को शुद्ध करने में सहायता करता है।

ड्रेसेना – ड्रेसेना (जेनेट क्रेग) एक और इंडोर पौधा है जो कम से कम धूप और देखभाल के साथ घर के अंदर विकसित हो जाता है। यह आसानी से वातावरण में फैली फार्मलाडिहाइड, बेंजीन, जाइलीन और ट्राईक्लोरोएथिलीन जैसी विषाक्त गैसों को कम करता है। ड्रेसेना की कई किस्में आसानी से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाईं जाती हैं। हालांकि पौधे के कुछ हिस्से, पालतू जानवरों के लिए विषाक्त हो सकते हैं इसलिए इसकी देखभाल की आवश्यकता होगी।

तब न जाने क्यों..?

मैं जब भी अकेला होता हूँ,
किसी शांत जगह पर जाकर बैठता हूँ,

इसलिए की मन को शांति मिले,
क्षण भर के लिए विचारों से मुक्ति मिले।।
तब न जाने क्यों...?
शुरू हो जाते हैं, मस्तिष्क में विचारों के सिलसिले,
आपको भी बता दूं, जो विचार आते हैं।
मेरे हृदय में हलचल मचा जाते हैं।।

मैं जब भी अकेला बैठा,
यही विचार आए।
इस उजड़े चमन में,
न जाने कब बहार आए।।

फिर से इंसानियत के फूल खिले,
चिंता से मुरझाया कोई चेहरा ना मिले।।
सबकी जुबाँ पर प्रेम प्रीत के तराने हो ,
श्याम राधे के मधुर गीतों के खजाने हो।।

किसी तरह का अभाव ना हो, बस भाव ही भाव हो।
आत्म समर्पण की भावना हो, इंसानियत से लगाव हो।।

हिंसा नफरत की भावनाएं, हृदय से मिट जाए।
जिंदगी क्या है ? क्यों मिली है ?
बस 'निर्मोही' इंसाँ, यही रहस्य जान जाए।।

श्याम निर्मोही
साहित्यकार, बीकानेर

ऊँट री चाल

रेगिस्तान के धोरे, उबड़ खाबड़ रास्ते
ऊँट ही है जो पहुंचा दे अपने रास्ते।
लहराती चाल जैसे थिरकते मोर
पगों का दामन पहुंचा दे उस छोर।
धोरों का नजारा, पल भर बना दे बंजारा
ऐसी मस्त सी चाल, भुला दे जग के जंजाल।
धीमी गति की चाल, मुस्करा दे डौल–डौल
मुस्करा दे डोल डाल।

राजेश कुमार सावल
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

महिलाओं की खुशहाली का सकारात्मक प्रभाव

दीपिका लालवानी
हैप्पीनेस एंड लाइफ कोच
अजमेर (राजस्थान)

भारत जैसे विकासशील देश की तरफ जहाँ महिलाओं, माताओं और बहनों की मन की स्थिति, मानसिक अवसाद की स्थिति नाजुक है।

किसी ने मुझसे पूछा–दीपिका आपका क्या मानना है? भारत देश अवसाद में पूरे विश्व मे पहले दर्जे पर है और उसमें से औरतों का अनुपात ज्यादा है ऐसी क्या मानसिक स्थिति हैं, भारत में महिलाओं की आप हैप्पीनेस एंड लाइफ कोच हैं, महिलाओ की हैप्पीनेस के बारे मे आपके क्या तर्क हैं ?

उन्हें बताया गया है कि ईश्वर ने इस सृष्टि की खूबसूरत रचना करने के बाद एक औरत को इस सृष्टि चलाने का कार्य सौंपा। अलग–अलग रूप में औरत के किरदार इस धरती पर निश्चित हुए जैसे माँ, बहन, पत्नी, बेटी आदि अहम किरदार माने गए।

इसमें से भी माँ का किरदार जो संसार का सबसे ऊँचे दर्जे का माना जाता है, ये सौभाग्य ईश्वर द्वारा औरत को मिला, प्रकृति की सुन्दर रचना के बाद, ईश्वर ने औरत को संसार की प्रक्रिया चलाने को सौंपा।

अब हम आते हैं आज के दौर में जहाँ भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं की मानसिक अवसाद की स्थिति के बारे में गहराई से समझते हैं।

महिला होना सबसे पहले तो गर्व की बात है, और ये निश्चित ही किसी सौभाग्य से कम नहीं है। मेरे जीवन के अभी तक के सफर और सफलता के स्तर पर भी मेरे इस महिला स्वरुप ने बहुत बार साथ दिया। सब जगह जीवन के हर कदम पर भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। प्रेम, सम्मान जिसकी हर महिला हकदार हैं भी.. अब आते हैं कि इन उपलब्धियों को हर महिला अपने जीवन के सफर में कैसे ला सकती हैं?

यहां हर महिला, बहन, माता से कहना चाहूंगी कि आप इस अद्भुत सृष्टि का बेहद ही खूबसूरत हिस्सा हैं। सबसे पहले आप अपनी कीमत समझें कि आपको क्या उपहार मिला हैं।

अब आते हैं घरेलू महिलाओं पर, आज आप परिवार की जिम्मेदारी तो अच्छे से निभा रही हैं लेकिन जो जिम्मेदारी आपके अपने प्रति बनती है, खुद को खुशी देने की, खुद खुश रहने की वो कहीं ना कहीं गायब होती दिख रही है।

आप दूसरों की जरूरत पूरी करते–करते अपनी जरूरतों को नजर अंदाज कर जाती हैं। ये जीने का सही तरीका नही हैं।

आज देश की आधी आबादी का आप हिस्सा हैं। आप परिवारों की 'नींव' कहलाती हैं। आपको ये बात समझनी चाहिए। आपके मन की स्थिति, देश के परिवारों के मन की स्थिति और फिर परिवारों के मन की स्थिति, देश के मन की स्थिति बन जाएगी।

महिलाओं के इमोशन (स्ट्रेस, एंग्जायटी) उनके स्वास्थ्य के लिए भी खतरा साबित हो रहे हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाओं में बीमारियों का स्तर ज्यादा देखा गया है।

अब मानसिक रोगों की वजह से उनके स्वयं के ऊपर और समाज और परिवारों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ रहा हैं? उसे जानेंगे। मानसिक रोगों मे महिलायें–दुख, चिंता, क्रोध, चिड़चिड़ापन, मंदी मनोदशा, एकाग्रता में कमी, आत्महत्या, ग्रहणता, संदेह आदि शामिल हैं।

क्योंकि महिलाएं समाज का आइना हैं, परिवारों की नीव हैं। इसलिए उनके मानसिक रोगों के प्रभाव सिर्फ उन्हीं पर नहीं बल्कि समाज पर भी पड़ रहे हैं। अब हम इस स्थिति को कैसे बेहतर कर सकते हैं? उसके बारे मे बात करेंगे। निम्नलिखित कुछ सुझाव हैं जो हर महिला के जीवन को समझना आवश्यक हैं। इससे उनके और समाज के मन की स्थिति पर काफी सकारात्मक प्रभाव आएंगे :

1. खुद के लिए समय निकालें

अपने जीवन की प्राथमिकता अपने आपको देना सीखें।

परिवार बिल्कुल आपकी जिम्मेदारी का हिस्सा हैं लेकिन आपकी पहली जिम्मेदारी अपने प्रति ही बनती हैं। खुद के लिए दिन का एक घंटा निश्चित निकालें। इस दौरान आप कोई भी अपनी मनपसंद गतिविधि कर सकती हैं जैसे व्यायाम, सैर पर जाना, सकारात्मक पुस्तकें पढ़ना, आपकी मनपसंद (फेवरेट) हॉबी या अपना हुनर जो भी हों, उसको अपने जीवन की दिनचर्या में शामिल करें, ये आपके मन की स्थिति को बेहतर बनाएगा।

2. खुद में खुश रहना सीखें

आपकी नाराजगी का कारण अक्सर आपके दूसरे होते हैं लेकिन अगर आप खुद खुश रहना सीख लें तब आपकी दूसरों के प्रति नाराजगी कम हो जाएगी और धीरे–धीरे खत्म भी हो जाएगी।

कहते हैं ना! जो खुद खुश रहते हैं, उनसे परिवार और समाज खुश रहता है। आपकी पहली जिम्मेदारी खुद को खुश रखना और फिर परिवार और समाज पर उसका प्रभाव भी जल्दी दिखने लग जाएगा।

3. आत्म - प्रेम तरीका अपनाएँ

खुद से प्रेम करना सीखें, आत्म–स्वीकृति महिलाओं की परेशानी का कारण देखा गया है, अक्सर महिलायें अपने बाहरी स्वरुप को लेकर ज्यादा चिंतित रहती हैं। उनकी खुशी कई बार उनकी बाहरी सुंदरता पर निर्भर होती है। इससे ईर्ष्या की भावना महिलाओं में जल्दी पनपती हैं जो उनके खराब मानसिक स्वास्थ्य की द्योतक है।

ईश्वर की प्रकृति कोई नहीं बदल सका, आप जैसी है बस वैसे ही अपनी प्रकृति को स्वीकारें।.

4. अपनी शक्तियों की पहचान जरुरी

आपके भीतर जो मौजूद हैं यानि आध्यात्मिक तौर पर कहूं तो जो शक्ति आपके भीतर मौजूद हैं, वह न तो नर है ना ही नारी, आप सृष्टि का हर एक काम करने में सक्षम हैं। अपनी शक्तियों को पहचानें और अपनी कमियों पर काम करें। एक महिला होना तो बाहरी वेशभूषा है, बाहरी परत है लेकिन अंदर से आप मजबूत योद्धा है, एक शक्ति स्वरुप है।

5. आत्म विश्वास पैदा करना

आज महिलाओं की सबसे बड़ी कमजोरी आत्मविश्वास में कमी को देखा गया है। जिन महिलाओं ने अपने आत्मविश्वास पर जीत हासिल कीं, उन्होंने इस देश का इतिहास रचा यथा–कल्पना चावला, किरण बेदी, प्रतिभा पाटिल आदि समस्त महिलाएँ आत्मविश्वास के साथ जब–जब आगे आईं तब–तब उदाहारण सिद्ध हुईं तथा इन्होंने समाज की सोच को बदला।

इससे हम समझ सकते हैं आत्मविश्वास आपके लिए नहीं बल्कि पूरे समाज और परिवारों के लिए उदाहरण सिद्ध हुआ है।

आपकी खुशी की कीमत और ताकत इतनी हैं कि यदि आप जीवन के हर क्षेत्र में, हर रूप में आप खुश रहना सीख लें तो, आपकी खुशी पूरे समाज पर सकारात्मक प्रभाव पैदा कर सकती हैं।

जब–जब भारत की हर बेटी, बहन, माँ, पत्नी मुस्कुराएंगी, तब–तब एक नए भारत का स्वरुप पूरी दुनिया देखेंगी। हंस्ता–मुस्कुराता भारत, क्योंकि महिलाओं का खुश रहना देश की खुशहाली और प्रगति में बहुत बड़ा योगदान सिद्ध होगा।

शिक्षा

जो रोते हुए बालक को
गले लगा ले ।
उसे जीवन का अर्थ बता
प्रेम सिखा दे ।

जो दौड़ते हुए प्रौढ़ को
कर्त्तव्य बता दे ।
उसे जीवन का महत्त्व बता
जीतना सिखा दे ।

जो डरते हुये किशोर को
निडर बना दे ।
उसे जीवन का नक्शा बता
चलना सिखा दे ।

जो दुःखी हुए वृद्ध को
शांति दिला दे ।
उसे जीवन का सार बता
सत्संग सिखा दे ।

जो गिरते हुए युवा को
तुरंत उठा ले ।
उसे जीवन का मूल्य बता
तपना सिखा दे ।

जो भटके हुए मानव को
सही दिशा दे ।
उसे जीवन का लक्ष्य बता
जीना सिखा दे ।

स्वामी विमर्शानन्द गिरि
सचिव, मानव प्रबोधन प्रन्यास, शिवबाड़ी, बीकानेर

ठूंठ

ठूंठ में बने पक्षियों के घरोंदों से टकराकर
ठंडी हवाओं से जब सीटियाँ बजीं,
दिल झूम उठा, ठूंठ ही सही हूँ पर शहनाई तो बजी
एक घरोंदा हूँ, जो मुझ पर आकर चहकती हैं
आशियाँ हूँ तभी तो जो मुझ पर आकर बहकती हैं
वर्षों से ठूंठ सा बना खड़ा था धरती पर
जब शाख पर मेरी बैठ गया उल्लू,
छलावरण कर बना सकता है आप का ठुल्लू
टक टक करती धुन ने, ध्यान मेरा बहकाया,
सोच से पहले, कठफोड़े ने अपना महल बनाया
मानव की भलाई के लिए उसने मेरी की खूब धुनाई
हर दिल में छिपा हूँ, पर ठूंठ मोल ना जाने कोय
जब तूफान आये तभी अटके सुर लहराए
जब तिरंगा मुझ पर लहराया, मुझे पहचान मिल गई,
देश की मिट्टी की जुबां मिल गई
लहराया जब उस ठूंठ पर मुझे, वतन का नाम मिल गया
दिल मेरा खिल गया, एक ठूंठ को मुकाम मिल गया

राजेश कुमार सावल
निदेशक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

राजभाषा संबंधी गतिविधियां

हिन्दी सप्ताह -2018 का कार्यवृत्त

हिन्दी दिवस–2018 के उपलक्ष्य पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली से प्राप्त पत्रांक 10(1)/2018–हिन्दी दिनांक 16 अगस्त, 2018 की अनुपालना में भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर द्वारा दिनांक 14–22 सितम्बर, 2018 तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया। केन्द्र में हिंदी सप्ताह की अवधि के दौरान राजभाषा के प्रगामी प्रयोग एवं उपयुक्त वातावरण के सृजन हेतु विभिन्न गतिविधियां एवं कार्यक्रम आयोजित किए गए। केन्द्र के वैज्ञानिकों/अधिकारियों/कर्मचारियों ने आयोजित गतिविधियों में उत्साहपूर्वक सहभागिता निभाते हुए हिन्दी सप्ताह को सफल बनाने में सहयोग प्रदान किया।

हिन्दी सप्ताह : उद्घाटन कार्यक्रम

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र में दिनांक 14 सितम्बर, 2018 को केंद्र निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. एन. वी. पाटिल द्वारा हिन्दी सप्ताह का विधिवत् शुभारम्भ किया गया। हिन्दी सप्ताह समारोह के उद्घाटन पर मुख्य अतिथि डॉ. शालिनी मूलचंदानी, विभागाध्यक्ष, हिन्दी साहित्य, डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर ने कहा कि हिन्दी के विकास को लेकर चिंतित होने की जरूरत नहीं है। विश्व व्यापी पूँजी व्यवस्था में हिन्दी का स्वतः ही विकास हो रहा है। हिन्दी की इसी उदारता, नवनीयता ने उसे विश्वभाषा बनाया है। डॉ. मूलचंदानी ने हिन्दी भाषा की वैश्विक स्थिति, साहित्य–कला के क्षेत्र में इसके योगदान पर विचार रखते हुए वर्तमान में इसके प्रचार–प्रसार में सोशल मीडिया के योगदान को भी सराहा, परंतु भाषा के स्वरूप को सही रखने हेतु भी प्रेरित किया।

मुख्य अतिथि डॉ. मूलचंदानी अभिभाषण प्रस्तुत करते हुए

हिन्दी सप्ताह के शुभ अवसर पर निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. एन.वी. पाटिल ने कहा कि हिन्दी का विकास सर्वत्र देखा जा सकता है। हिन्दी भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, अतः भाषा में भावनाओं के समावेश का विशेष ध्यान रखा जाए ताकि वह अधिक प्रभावी बनें। डॉ. पाटिल ने इतिहास के परिप्रेक्ष्य में अपनी बात रखते हुए कहा कि भारत 'विश्व गुरू' रहा है। अतः हमारे देश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सही परिप्रेक्ष्य में सामने रखे जाने की जरूरत है, ताकि हमारे अंदर विद्यमान भारतीयता गौरवान्वित स्वरूप में प्रकट हों। डॉ. पाटिल ने केन्द्र की अनुसंधान उपलब्धियों को किसानों के समक्ष सरल व सहज भाषा में रखने पर जोर दिया ताकि अनुसंधान का लाभ जरूरतमंदों को मिल सके।

केन्द्र निदेशक डॉ. पाटिल संबोधित करते हुए

उद्घाटन कार्यक्रम में प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना ने हिन्दी सप्ताह के दौरान आयोज्य विभिन्न गतिविधियों व कार्यक्रमों की जानकारी दीं।

हिन्दी सप्ताह के अंतर्गत आयोजित गतिविधियां/कार्यक्रम

1. हिन्दी में निबंध लेखन प्रतियोगिता

हिन्दी सप्ताह के तहत दिनांक 17.09.2018 को हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें

हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता

प्रतिभागियों ने विशेष रूचि दिखाते हुए इस प्रतियोगिता को सार्थक बनाया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान क्रमशः श्री दिनेश मुंजाल, डॉ. राकेश पूनियां एवं डॉ. राकेश रंजन ने अर्जित किया वहीं प्रोत्साहन पुरस्कार डॉ. देवेन्द्र कुमार, श्री हरपाल सिंह कौंडल एवं डॉ. विनोद कुमार यादव को दिया गया।

2. हिन्दी में श्रुति लेखन प्रतियोगिता

हिन्दी में शुद्ध लेखन के महत्व को ध्यान में रखते हुए हिन्दी सप्ताह के तहत दिनांक 17.09.2018 को श्रुति लेखन प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय व तृतीय पुरस्कार क्रमशः श्री दुर्गा सिंह अस्वाल, श्री अशोक कुमार एवं श्री माणक लाल किराडू ने प्राप्त किया। प्रोत्साहन पुरस्कार श्री किशन कुमार को दिया गया।

हिन्दी में श्रुति लेखन प्रतियोगिता

3. हिन्दी में अनुवाद प्रतियोगिता

हिन्दी सप्ताह के तहत हिन्दी में अनुवाद हेतु अधिकाधिक वैज्ञानिकों/अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रोत्साहित किए जाने के उद्देश्य से दिनांक 18.09.2018 को इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। सभी प्रतिभागियों ने इस प्रतियोगिता में सहर्ष प्रतिभागिता के साथ इसे सफल बनाया। हिन्दी सप्ताह में आयोजित इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. राकेश कुमार पूनियां, द्वितीय स्थान पर श्री राम दयाल एवं तृतीय स्थान पर श्री हरपाल सिंह कौंडल रहे, वहीं प्रोत्साहन पुरस्कार डॉ. राकेश रंजन, श्री राधाकृष्ण वर्मा एवं डॉ. विनोद कुमार यादव ने प्राप्त किया।

हिन्दी में अनुवाद प्रतियोगिता

4. हिन्दी में प्रश्न मंच (क्वीज) प्रतियोगिता

हिन्दी सप्ताह की विभिन्न गतिविधियों के तहत अधिकारियों एवं कार्मिकों के ज्ञान में अभिवृद्धि हेतु दिनांक 18.09.2018 को हिन्दी में प्रश्न मंच (क्विज) प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें प्रतिभागियों से मौखिक तौर पर प्रश्न पूछे गए। सभी ने इस प्रतियोगिता में गहरी रूचि प्रदर्शित की। प्रतिभागियों को प्रोत्साहित करने के

हिन्दी में प्रश्न मंच (क्विज) प्रतियोगिता

प्रयोजनार्थ इस प्रश्न मंच में अलग–अलग टीमों का गठन करते हुए विजेता टीमों को पुरस्कार दिया गया।

5. हिन्दी में वाद-विवाद प्रतियोगिता

अधिकारियों एवं कर्मचारियों में अभिव्यक्ति क्षमता के विकास हेतु दिनांक 19.09.2018 को हिन्दी में वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें निर्णायक मंडल के रूप में राजकीय डूँगर महाविद्यालय बीकानेर के डॉ. ब्रजरतन जोशी, वरिष्ठ व्याख्याता एवं डॉ. सुचित्रा कश्यप, सह आचार्य को आमंत्रित किया गया। डॉ. जोशी ने प्रतिभागियों की अभिव्यक्ति क्षमता के विकास हेतु अन्य कई जरूरी पहलुओं पर भी बात कीं, वहीं डॉ. कश्यप ने संप्रेषणीयता के महत्व पर प्रकाश डाला। इस वाद–विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर श्री दिनेश मुंजाल, द्वितीय स्थान पर डॉ. विनोद कुमार एवं तृतीय स्थान पर डॉ. आर. के.सावल रहे वहीं प्रोत्साहन पुरस्कार डॉ. वेद प्रकाश, श्री हरपाल सिंह एवं श्री माणक लाल किराडू को मिला।

वाद–विवाद प्रतियोगिता में प्रतिभागी विचार प्रस्तुत करते हुए

निर्णायिका डॉ. सुचित्रा कश्यप विचार प्रस्तुत करते हुए

6. राजभाषा कार्यशाला

हिन्दी सप्ताह के तहत दिनांक 20.09.2018 को राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें कुल दो व्याख्यान रखे गए।

कार्यशाला में मंचस्थ अतिथि एवं व्याख्यान प्रस्तुतीकरण

प्रथम व्यख्यान में अतिथि वक्ता के रूप में डॉ. गौरव बिस्सा, सह आचार्य, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर ने 'कार्यस्थल पर नैतिक आचरण का महत्व' विषयक व्याख्यान में बोलते हुए कहा कि उपयुक्त वातावरण का सृजन हेतु नैतिकता पर अपेक्षित ध्यान दिया जाना नितांत आवश्यक है। डॉ. बिस्सा ने क्रियान्वयन एवं स्वयं के कार्य को स्वयं द्वारा करने पर जोर देते हुए कहा कि राष्ट्र का विकास सामान्य रूप में निहित है। अतः व्यक्ति को अपने सामान्य रूप को बनाए रखना चाहिए ताकि नैतिकता को अपनाकर हम सच्चे अर्थ में अपना विकास कर सके।

इस कार्यशाला में दूसरे अतिथि वक्ता के रूप में डॉ. विमला, प्रोफेसर, राजकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर ने 'कृषि एवं पशुपालन में महिलाओं का योगदान' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा कि भारत के पुरुष

प्रधान समाज में भी महिलाओं को आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर हैं, अतः महिलाओं को इसके लिए आगे आना होगा। उन्होंने कहा कि कृषि एवं पशुपालन जैसे क्षेत्रों में महिलाएं सदियों से योगदान देती आई हैं और वे आज भी इनमें सहज रूप से लगी हुई हैं। अतिथि वक्ता ने भारत को विश्व गुरु बनाने पर बोलते हुए कहा कि महिलाओं में चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता है, वे समाजार्थिक विकास हेतु महत्ती भूमिका निभा सकती हैं क्योंकि आज की महिलाएं अधिक पढ़ी–लिखी व हर कार्यक्षेत्र में कुशलता हासिल कर रही हैं।

इस अवसर पर केन्द्र निदेशक एवं कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ. एन. वी. पाटिल ने कहा कि दूसरों में भ्रष्टाचार को देखकर स्वयं का आत्मविश्लेषण करने एवं सतर्क रहने की आवश्यकता है। इससे गलत वातावरण हमें प्रभावित नहीं कर सकेगा और हम सही विकास की ओर आगे बढ़ सकेंगे। उन्होंने कार्यस्थल पर अपनी कर्त्तव्य परायणता हेतु सजग रहने के लिए भी प्रोत्साहित किया। डॉ. पाटिल ने कहा कि संस्कृति के संरक्षण हेतु नीति (वैल्यू सिस्टम) को जीवन का हिस्सा बनाना होगा। उन्होंने कहा कि समाज के सर्वांगीण विकास हेतु महिलाओं की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। जब समानता का वातावरण बनेगा तो यह न केवल कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र में ही नहीं अपितु हर क्षेत्र में सुखद स्थिति का द्योतक बनेंगा। डॉ. पाटिल ने राजभाषा कार्यशाला के माध्यम से रखे गए महत्वपूर्ण व्याख्यानों की सराहना करते हुए कहा कि प्रबुद्ध वक्ता जब संबंधित विषय पर अपनी बात रखते हैं तो उसकी प्रभाविता अधिक होती है।

प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना ने राजभाषा कार्यशालाओं के महत्व पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम का संचालन श्री नेमीचंद, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी ने किया।

7. हिन्दी में शोध पत्र पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता

वैज्ञानिक वर्ग में हिन्दी में शोध पत्र को बढ़ावा देने हेतु दिनांक 22.09.2018 को एक शोध पत्र पोस्टर प्रदर्शन का आयोजन किया गया। शोध पत्र प्रतियोगिता में निर्णायक मंडल के रूप में डॉ. एन. डी. यादव, प्रभागाध्यक्ष, काजरी संस्थान, बीकानेर, डॉ. एच.के. नरूला, प्रभागाध्यक्ष, शुष्क क्षेत्रीय परिसर, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, बीकानेर एवं डॉ. एस.सी. मेहता, अध्यक्ष, केन्द्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर को आमंत्रित किया गया। शोध पत्र प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. आर.के. सावल, द्वितीय स्थान पर डॉ. देवेन्द्र कुमार एवं तृतीय स्थान पर डॉ. वेद प्रकाश एवं डॉ. मतीन अंसारी तथा प्रोत्साहन पुरस्कार डॉ. राकेश रंजन को प्राप्त हुआ।

प्रतियोगिता के दौरान प्रतिभागी एवं निर्णायक गण

हिन्दी सप्ताह पुरस्कार वितरण एवं समापन समारोह

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र में आयोजित हिन्दी सप्ताह (14–22 सित.) के समापन समारोह पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे डॉ. अन्नाराम शर्मा, अध्यक्ष, अखिल भारतीय साहित्य परिषद (राज.) ने अपने अभिभाषण में कहा कि हिन्दी भाषा प्रयोग के दौरान क्लिष्ट शब्दावली के स्थान पर उसके सरलीकरण पर जोर दिया जाना चाहिए। हिन्दी भाषा में आमजन के समझ की भाषा का समावेश हो। तभी हिंदी सार्थक स्वरूप में आगे बढ़ पाएगी। डॉ. शर्मा ने सदन के समक्ष कई ऐसे चिंतन के विषय रखे जिनसे वास्तविक स्वरूप में हिन्दी की प्रगति को आगे बढ़ाने में मदद मिल सके।

हिन्दी सप्ताह के समापन के अवसर पर अध्यक्षीय उद्‌बोधन देते हुए केन्द्र निदेशक डॉ. एन. वी. पाटिल ने सभी विजेता प्रतिभागियों को बधाई दीं तथा कहा कि हिन्दी भाषा आम बोलचाल की भाषा है, इसे गौरवपूर्ण रूप से प्रयुक्त किया जाए। डॉ. पाटिल ने भाषा के सरल रूप का महत्व बताते हुए कहा कि किसानों तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान पहुंचाने हेतु हिन्दी एक सशक्त माध्यम है, अतः इसका अधिकाधिक प्रयोग हो ताकि जरूरतमंदों तक इसका लाभ पहुंचाया जा सके।

समापन समारोह में बतौर विशिष्ट अतिथियों के रूप में डॉ. पी. एल. सरोज, निदेशक, केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, डॉ. एच. के. नरूला, प्रभागाध्यक्ष, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, डॉ. एस.सी. मेहता, अध्यक्ष, केन्द्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र एवं डॉ. एन.डी. यादव, अध्यक्ष, काजरी ने हिन्दी भाषा को प्यार और संस्कार, जन–जन के सम्पर्क की भाषा बताते हुए अधिकाधिक वैज्ञानिक कार्य राजभाषा हिंदी माध्यम से करने व शिक्षण व्यवस्था प्रभावी रूप में हिंदी माध्यम से किए जाने पर जोर दिया।

समारोह में अतिथियों द्वारा हिन्दी सप्ताह के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं यथा–हिन्दी निबंध

हिन्दी सप्ताह समापन समारोह में पधारे अतिथि गण एवं पुरस्कार लेते हुए प्रतिभागी गण

प्रतियोगिता, हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता, हिन्दी में श्रुति लेखन प्रतियोगिता, हिन्दी में प्रश्न मंच, हिन्दी में वाद–विवाद प्रतियोगिता, हिन्दी में शोध पत्र प्रदर्शन प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। प्रभारी राजभाषा डॉ.बसंती ज्योत्सना ने केन्द्र के राजभाषा इकाई की उपलब्धियों एवं गतिविधियों की विस्तृत विवरण सदन के समक्ष रखा। कार्यक्रम का संचालन श्री हरपाल सिंह कौंडल ने किया।

राजभाषा कार्यशालाएँ

राजभाषा कार्यशाला- 22.12.2018

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र में दिनांक 22 दिसम्बर, 2018 को राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। तिमाही की इस राजभाषा कार्यशाला में 'हिन्दी में शुद्ध लेखन' विषयक व्याख्यान हेतु डॉ. अन्नाराम शर्मा, सह आचार्य, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर एवं 'स्वच्छता : एक सामाजिक एवं नैतिक जिम्मेदारी' विषयक व्याख्यान हेतु श्री मोहर सिंह यादव, प्राचार्य, चौपड़ा कटला स्कूल, बीकानेर एवं संस्थापक, स्वच्छता प्रहरी संस्थान बीकानेर को अतिथि वक्ता के रूप में आमन्त्रित किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : उद्देश्य व महत्व

कार्यशाला सत्र के प्रारम्भ में केन्द्र की प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना ने कार्यशाला के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि भारत सरकार की राजभाषा नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु आयोजित राजभाषा कार्यशालाओं का मुख्य उद्देश्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राजभाषा के उत्तरोत्तर प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करने, के साथ–साथ राजभाषा प्रयोग के दौरान होने वाली झिझक को दूर करते हुए, बाधाओं/शंकाओं का उचित निराकरण प्रस्तुत करना है। चूंकि यह केन्द्र 'क' क्षेत्र में स्थित है तथा केन्द्र हिन्दी ज्ञान स्तर के अनुसार एक अधिसूचित कार्यालय है, अतः इसे दृष्टिगत रखते हुए केन्द्र में आयोजित कार्यशालाओं में राजभाषा के माध्यम से विविध महत्वपूर्ण विषयों/विधाओं पर भी व्याख्यान रखे जाते हैं ताकि अधिकारियों/कर्मचारियों के ज्ञान में अभिवृद्धि की जा सके।

व्याख्यान सत्र

इस अवसर पर अतिथि वक्ता डॉ. अन्नाराम शर्मा, सहायक आचार्य, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर ने 'हिन्दी में शुद्ध लेखन' विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा कि वर्तमान समय में भाषा की शुद्धता को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि गलत वाक्यों/शब्दों का चलन अपना स्थायी प्रभाव बना लेते हैं, इसलिए गंभीरता की आवश्यकता है। डॉ. शर्मा ने प्रयुक्त होने वाले अनेकानेक वाक्यों को सउदाहरण प्रस्तुत कर प्रतिभागियों को शुद्ध प्रयोग हेतु जागरूक किया। उन्होंने कहा कि आमजन में परस्पर विचार–विमर्श के दौरान तथा समाचार पत्र–पत्रिकाओं में भी अनावश्यक शब्दों का चलन बहुतायत प्रचलित है, जबकि इनके बगैर भी अपनी बात रखी जा सकती है। इस ओर अपेक्षित ध्यान देने से भाषा का सही रूप सामने आएगा तथा भाषा को बोझिल होने से भी रोका जा सकता है।

डॉ. शर्मा के व्याख्यान पश्चात प्रतिभागियों द्वारा भाषा संबंधी कई शब्दों/वाक्यों से संबधित जिज्ञासाओं को अतिथि वक्ता के समक्ष रखा गया जिनका उचित निराकरण प्रस्तुत किया गया।

स्वच्छता संबंधी कार्यक्रम में अतिथि वक्ता के रूप में श्री मोहर सिंह यादव, संस्थापक, स्वच्छता प्रहरी संस्थान, बीकानेर ने 'स्वच्छता : एक सामाजिक एवं नैतिक जिम्मेदारी' विषयक व्याख्यान में समाज एवं देश के लिए स्वच्छता अभियान से जुड़ने की बात कहीं। श्री यादव ने बीकानेर को स्वच्छ बनाने संबंधी अपने अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि जब तक स्वच्छता के प्रति हम गंभीर नहीं होंगे तब तक हम आगे नहीं बढ़ेंगे। इसलिए समर्पित भाव से सहयोग प्रदान करें।

केन्द्र के कार्यकारी निदेशक डॉ. आर. के. सावल ने कहा कि राजभाषा कार्यशाला एवं स्वच्छता व्याख्यान में प्रदत्त जानकारी निश्चित रूप से प्रतिभागियों के ज्ञान में अभिवृद्धि करने में सहायक बनेंगी। उन्होंने कहा कि हमें स्वच्छता संबंधी कार्यक्रमों में भरपूर योगदान देना चाहिए ताकि कार्यक्रमों की सार्थकता सिद्ध हो सके। वहीं भाषा में भी शुद्धता हेतु भी प्रयत्नशील रहें।

राजभाषा कार्यशाला : दिनांक 29.03.2019

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में राजभाषा नीति कार्यान्वयन के अन्तर्गत दिनांक 29 मार्च, 2019 को राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। अंतिम तिमाही की इस कार्यशाला में 'कार्यस्थल पर कैसे लाएं सकारात्मक बदलाव' विषयक व्याख्यान हेतु अभिप्रेरक वक्ता डॉ. चक्रवर्ती नारायण श्रीमाली, सहायक आचार्य,

राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर को आमन्त्रित किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : उद्देश्य व महत्व

कार्यशाला सत्र प्रारम्भ से पूर्व केन्द्र की प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना ने कार्यशाला के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि भारत सरकार की राजभाषा नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु आयोजित राजभाषा कार्यशालाओं का मुख्य उद्देश्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राजभाषा के उत्तरोत्तर प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करना, राजभाषा प्रयोग के दौरान होने वाली झिझक को दूर करते हुए बाधाओं, शंकाओं का उचित निराकरण प्रस्तुत करना होता है। साथ ही इन कार्यशालाओं में हिन्दी भाषा के माध्यम से ऐसे विविध विषयों को भी सम्मिलित किया जाता है जिनके माध्यम से अधिकारियों एवं कर्मचारियों को महत्वपूर्ण एवं उपयोगी जानकारी का लाभ प्राप्त हो सके ताकि संस्थान की प्रगति हेतु भी यह सहायक सिद्ध हो सके।

व्याख्यान सत्र

अभिप्रेरक वक्ता डॉ. चक्रवर्ती नारायण श्रीमाली ने व्याख्यान में सर्वप्रथम भाषा की संप्रेषणीयता व उसके प्रभाव पर खुलकर बात कीं। उन्होंने कहा कि हिन्दी भाषा का विकास निरन्तर हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे अन्य भाषाओं का हुआ है। हिन्दी भाषा की संप्रेषणीयता एवं सरलता इसे विश्व पटल पर आने में महत्वपूर्ण रूप से सहायक है। डॉ. श्रीमाली ने भाषा के प्रभाव के बारे में कहा कि कोई भी भाषा अपने शामियानों से नहीं अपितु उसमें सम्मिलित होने वाले लोगों से बड़ी होती है और हिन्दी भाषा में वह क्षमता विद्यमान है।

अतिथि वक्ता ने व्याख्यान विषय पर बोलते हुए कहा कि समस्याओं का समाधान हमें रूबरू (फेस टू फेस) तरीके से करना चाहिए। क्योंकि ज्यादा समस्याएं तब पैदा हो जाती है जब हम इस रूप में समस्या का समाधान नहीं खोज कर अप्रत्यक्ष (संचार व अन्य) तरीके से समाधान का निराकरण करना चाहते हैं।

डॉ. श्रीमाली ने कहा कि समाज व परिवार के वातावरण का प्रभाव, व्यक्ति की कार्यप्रणाली पर दृष्टिगोचर होता है जैसे कि अगर हमारे घर में सकारात्मक व खुशहाली का माहौल रहेगा तो हम कार्यालय/कार्यस्थल में भी कार्य करते वक्त खुशी महसूस करेंगे और यह न केवल कार्मिकों की क्षमता में अभिवृद्धि करेगा अपितु संस्थान की उत्पादकता में भी महत्वपूर्ण वृद्धि होगी। उन्होंने सकारात्मकता के प्रभाव को सउदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि बिल गेट्स आज विश्व विख्यात इसलिए हैं क्योंकि, उन्होंने चुनौतियों को स्वीकारा, असफलता से नहीं डरें। कोशिश करना एक अच्छी आदत होती है, न कि असफलता के डर से कोशिश ही न की जाए।

व्याख्यान के पश्चात् सामान्य चर्चा सत्र में प्रतिभागियों द्वारा विभिन्न पहलुओं से जुड़ी जिज्ञासाओं जैसे कि कार्यक्षमता अभिवृद्धि, सकारात्मक वातावरण के सृजन, व्यक्तित्व विकास आदि को अतिथि वक्ता के समक्ष रखा गया जिनका उचित निराकरण किया गया।

इस अवसर पर केन्द्र निदेशक एवं कार्यशाला कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. आर.के. सावल ने कहा कि सकारात्मक दृष्टिकोण का जीवन में अत्यंत महत्व है क्योंकि जहां नकारात्मकता व्यक्ति की ऊर्जा में कमी लाती है, वह न केवल स्वयं खिन्न रहता है अपितु उसके व्यवहार से परिवेश पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। वहीं सकारात्मक व्यक्ति हर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। वह जुड़ाव उत्पन्न करता है, साथ ही इससे भीतरी सुख की भी प्राप्ति होती है। अतः क्षमता संवर्द्धन हेतु इसे प्राथमिकता पर व्यवहार में लाया जाना चाहिए। डॉ. सावल ने अतिथि वक्ता द्वारा प्रस्तुत महत्वपूर्ण व्याख्यान की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि विशेषज्ञों द्वारा प्रदत्त जानकारी उनके जीवन का अनुभूत सार होती है, ऐसे में इनका भरपूर लाभ लिया जाना चाहिए। राजभाषा कार्यशाला का संचालन श्री हरपाल सिंह कौण्डल, वैयक्तिक सहायक द्वारा किया गया।

राजभाषा कार्यशाला : दिनांक 28.06.2019

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में राजभाषा नीति कार्यान्वयन के अन्तर्गत दिनांक 28 जून, 2019 को राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। चालू वित्तीय वर्ष की इस प्रथम राजभाषा कार्यशाला में 'कार्यालय में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग एवं हिन्दी भाषा व्याकरण की सूक्ष्मताएं' विषयक व्याख्यान हेतु अतिथि वक्ता डॉ. उमाकांत गुप्त, प्राचार्य, राजकीय सुदर्शना कन्या महाविद्यालय, बीकानेर को आमन्त्रित किया गया। अध्यक्षता

केन्द्र निदेशक डॉ. राजेश कुमार सावल द्वारा की गई।

राजभाषा कार्यशाला : उद्देश्य व महत्व

केन्द्र की प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना ने कार्यशाला में बताया कि कार्यस्थल पर प्रशासनिक कार्यों आदि में राजभाषा प्रयोग के दौरान कई ऐसे शब्दार्थ, वाक्य आदि सामने आते हैं जिन्हें प्रयोग करते समय झिझक व कठिनाई महसूस की जाती है। यद्यपि प्रत्येक कार्यालय में इसमें सहायता प्रदान करने हेतु राजभाषा इकाई की सुव्यवस्था होती है परंतु भाषा प्रयोग में आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास की आवश्यकता महसूस की जाती है। ऐसे में राजभाषा कार्यशालाएं अपना विशेष महत्व दर्शाती है।

व्याख्यान सत्र

व्याख्यान सत्र में अतिथि वक्ता डॉ. उमाकांत गुप्त ने व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा कि हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता यह है कि इसमें समाहित शब्द भारतीय संस्कृति को व्याख्यायित करते हैं। इसमें उच्चारण व क्रमबद्ध आने वाला हर छोटा वर्ण बड़े के संरक्षण में चलता है। ऐसी अनेक विशेषताओं के रहते यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा संस्कृति को संरक्षित करके चलती हैं। उन्होंने कहा कि हिन्दी में सामासिकता का भाव है, यह जन–जन को जोड़ती है तभी आज बाजारवाद के दौर में प्रबल रूप से इसे अपनाया जा रहा है। उन्होंने हिन्दी का भविष्य सुनहरा बताते हुए कहा कि आज विश्व के कई देशों में इसके अध्ययन व अध्यापन की सुव्यवस्था तेजी से पनप रही है। इसे आवश्यकता के रूप में अपनाते हुए वे हिन्दी भाषा के माध्यम से भारतीयता को जानने की इच्छा रखते हैं।

उन्होंने भाषा को बहता नीर बताते हुए कहा कि हिन्दी भाषा आत्मसात् का भाव लिए सभी सहोदरी भाषा को जोड़ने का काम करती है, इसकी किसी भी भाषा से प्रतिस्पर्द्धा नहीं है। अतः इस दृष्टिकोण से इसके प्रति परिष्कृत सोच रखी जानी चाहिए।

व्याख्यान के पश्चात् चर्चा–सत्र में प्रतिभागियों ने कार्यालय में राजभाषा के बेहतर प्रयोग एवं हिन्दी भाषा के व्याकरण से जुड़ी अनेकानेक जिज्ञासाओं को अतिथि वक्ता के समक्ष रखा जिनका उचित निराकरण किया गया। उन्होंने प्रतिभागियों की सक्रिय सहभागिता पर प्रसन्नता व्यक्त की तथा कहा कि भाषा प्रयोग में इच्छाशक्ति अत्यंत महत्व रखती है।

इस अवसर पर केन्द्र के निदेशक डॉ. आर. के. सावल ने केन्द्र में राजभाषा प्रचार–प्रसार सामग्री पर अपनी बात रखते हुए कहा कि हिन्दी भाषा में काम करना आज अत्यधिक सरल हो गया है, जरूरत केवल मानसिकता बनाने की है। डॉ. सावल ने कार्यशाला के व्याख्यान को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि व्याख्यानों के माध्यम से विशेषज्ञ द्वारा प्रस्तुत अपने जीवन का अनुभूत ज्ञान, हमें और नया सीखने हेतु प्रेरित करता है। उन्होंने केन्द्र की आवश्यकता को देखते हुए प्रोत्साहित किया कि दैनंदिन कार्यों में अधिकाधिक राजभाषा का प्रयोग किया जाए साथ ही जरूरतमंद ऊँट पालकों तक अनुसंधान की जानकारी भी हिन्दी भाषा के माध्यम से और अधिक प्रचारित–प्रसारित करने का प्रयास किया जाए। इस प्रयोजनार्थ वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी संकल्प के साथ जब राजभाषा का अधिकाधिक प्रयोग करेंगे तो निश्चित रूप से बेहतर परिणाम सामने आएंगे। केन्द्र निदेशक महोदय ने राजभाषा हिन्दी के दृष्टिकोण से ज्ञान में अभिवृद्धि व उनके दायित्व का भान कराने हेतु राजभाषा कार्यशालाओं को महत्वपूर्ण बताया।

राजभाषा कार्यशाला के कार्यक्रम का संचालन नेमीचंद बारासा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (राजभाषा) ने किया।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र को मिली नगर राजभाषा शील्ड

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर की वर्ष 2019 की प्रथम बैठक में भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर को प्रथम पुरस्कार के रूप में नगर राजभाषा शील्ड प्रदान की गई। मंडल रेल प्रबंधक कार्यालय में दिनांक 29.07.2019 को सम्पन्न इस बैठक में श्रीमान संजय कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष, नराकास एवं मंडल रेल प्रबंधक के कर कमलों से केन्द्र निदेशक डॉ. राजेश कुमार सावल को यह शील्ड व प्रशस्ति–पत्र देकर सम्मानित किया गया। बैठक में अध्यक्ष महोदय ने वर्ष 2018–19 के दौरान नगर में राजभाषा के सर्वाधिक एवं उत्कृष्ट प्रयोग के लिए (बड़े कार्यालय श्रेणी में) राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र द्वारा राजभाषा के उत्कृष्ट प्रयोग हेतु निदेशक डॉ. सावल को बधाई दीं तथा अन्य कार्यालयों/विभागों को भी राजभाषा

के अधिकाधिक प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करते हुए कहा कि अब कम्प्यूटर आदि उपकरणों के माध्यम से राजभाषा हिन्दी में कार्य करना अत्यंत सुविधाजनक हो गया है। उन्होंने भाषा प्रयोग में सरलीकरण पर जोर देने की बात कहीं। बैठक में निदेशक डॉ. सावल ने केन्द्र की राजभाषा गतिविधियों एवं कार्यों पर प्रकाश डाला तथा कहा कि केन्द्र को नगर राजभाषा शील्ड मिलना निश्चित रूप से अत्यंत सम्मान का प्रतीक है तथा इससे केन्द्र में राजभाषा प्रयोग हेतु और अधिक उपयुक्त वातावरण के सृजन में सहायता मिलेगी। उन्होंने प्रभारी राजभाषा डॉ. बसंती ज्योत्सना एवं राजभाषा इकाई सहित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को बधाई संप्रेषित करते हुए केन्द्र में राजभाषा के प्रगामी प्रयोग के संबंध में उचित मार्गदर्शन हेतु श्री अनिल कुमार शर्मा, बीकानेर नराकास सचिव का भी आभार व्यक्त किया।

नराकास अध्यक्ष श्री संजय कुमार, केन्द्र निदेशक डॉ. सावल को प्रथम पुरस्कार के रुप में शील्ड प्रदान करते हुए

केन्द्र द्वारा प्रकाशित हिन्दी/द्विभाषी प्रकाशन

1. राजभाषा पत्रिका करभ–अंक 16
2. वार्षिक प्रतिवेदन (2018–19)
3. दुधारू ऊँटों का प्रबंधन एवं स्वच्छ दूध उत्पादन–ट्रेनिंग मैन्युअल
3. उष्ट्र एक उत्कृष्ट वातावरणीय अनुकूलनशील प्रजाति –विस्तार पत्रक
4. ऊँटों को चिन्हित करने के पारंपरिक एवं नूतन तरीके –विस्तार पत्रक
5. पर्यावरणीय पर्यटन ऊँट व्यवसाय का नया आयाम –विस्तार पत्रक
6. ऊँटनी का दूध स्वास्थ्यवर्धक–जानिये कैसे? –विस्तार पत्रक
7. ऊँटों में पाईका रोग–विस्तार पत्रक
8. ऊँटनियों से स्वच्छ दूध उत्पादन–विस्तार पत्रक

भारत सरकार

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बीकानेर

प्रशस्ति-पत्र

वर्ष 2018-19 के दौरान नगर में राजभाषा के सर्वाधिक एवं उत्कृष्ट प्रयोग के लिए (बड़े कार्यालय श्रेणी में) राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर को नगर राजभाषा शील्ड प्रदान की जाती है।

(संजय कुमार श्रीवास्तव)
अध्यक्ष, नराकास एवं
मंडल रेल प्रबंधक

दिनांक –29-07-2019

राजभाषा वार्षिक पत्रिका 'करभ का कारवाँ ...

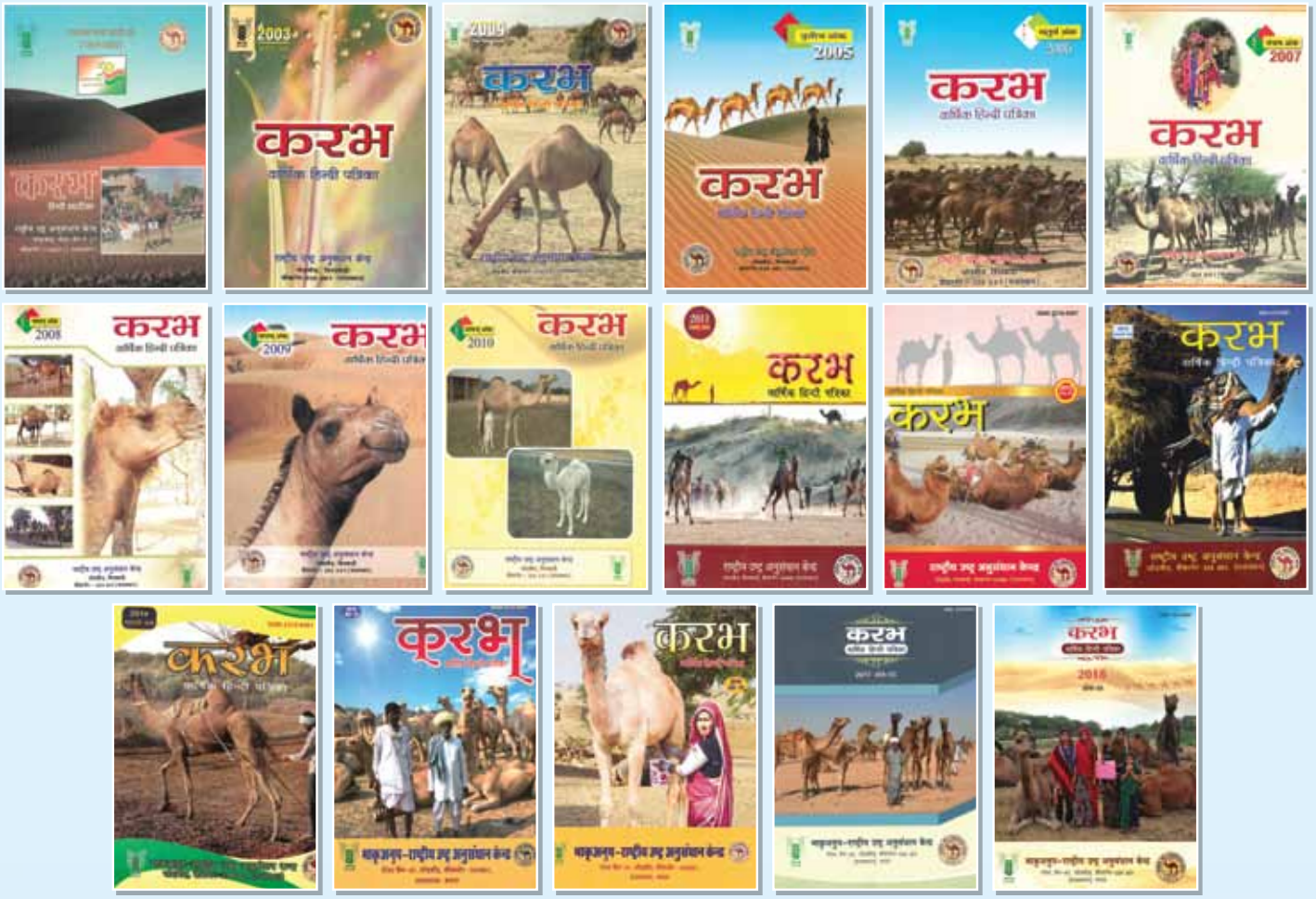

ऊंट दौड़ प्रतियोगिता
Camel Race Competition

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch